प्रकाशक :
मेघराज संचियालाल नाहटा
पो० बरौनी, जि० मुंगेर
बिहार

प्रथमावृत्ति १०००
माघ शुक्ला सप्तमी २०२१
मूल्य १.५०

मुद्रक
रामस्वरूप शर्मा,
राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली-६.

पुस्तक के प्रति

प्रस्तुत पुस्तक का विषय इसके नाम से स्पष्ट है। इसमे वह गाथा है जिसका सम्बन्ध जन-जन से है और इसमे वह श्लोक है, जिसका सम्बन्ध जन-मन्दिर की परिक्रमा करने वाले पुजारी से है। आचार्यश्री तुलसी भगवान् के मंदिर की परिक्रमा करने वाले नही हैं। उन्होंने परिक्रमा की है जनता की और इसलिए की है कि उसमें सोया हुआ भगवान् जाग जाए। उन्होंने अपने मन्दिर में विराजमान भगवान् को जगाया है और जनता को बताया है कि उसका भगवान् उसकी अपनी आराधना से ही जाग सकता है। इस पुस्तक का प्रधान स्वर अपनी आराधना का स्वर है, उसे लय में बाँधने का प्रयत्न मुनिश्री सुखलालजी ने किया है। वे अपने प्रयत्न मे सफल भी हुए हैं। भाषा की सरलता, प्रवाह और बात को प्रस्तुत करने का ढंग उनका अपना है, पर सफलता के लिए इतना ही पर्याप्त नही है। उसके लिए घटना-स्रोतों की सप्राणता अधिक अपेक्षित है। वह आचार्यश्री के परिपार्श्व मे सहज प्राप्त हुई है।

आचार्यश्री जैन मुनि हैं। अतः पादविहार उनका सहज-क्रम है। उन्होंने अपनी चरण-धूलि से हिन्दुस्तान के बहुत बड़े-भू-भाग का स्पर्श किया है। उस स्पृष्ट-क्षेत्र मे बिहार, उत्तर प्रदेश, पजाब और राजस्थान भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन्ही प्रदेशो से सम्बन्धित विवरण है।

आचार्यश्री ने वि० स० २०१६ मे सुदीर्घ पाद-विहार किया था। उस वर्ष कलकत्ता से राजस्थान लगभग दो हज़ार मील की यात्रा हुई थी। यात्रा का प्रारम्भ मृगसर बदि १ से हुआ था और उसकी सम्पूर्ति

हुई थी आषाढ़ी पूनम को। प्रस्तुत पुस्तक में पौष से चैत्र मास तक की घटनाओं का सकलन है।

अदृष्ट को देखना कठिन है तो दृष्ट को देखना कठिनतर। दूर को देखना कठिन है तो निकट को देखना कठिनतर। किसी मनीषी ने कभी लिखा था—अदृष्टं पश्य, दूरं पश्य। पर आज का मनीषी लिखना चाहता है—दृष्टं पश्य, निकटं पश्य। लेखक ने दृष्ट को देखने का व निकट को निहारने का प्रयत्न किया है, यह अवश्य ही दुर्गम कार्य है। श्रद्धा का सेतु सम्प्राप्त हो तो दुर्गम भी सुगम बन जाता है। लेखक का अन्तस्तल श्रद्धा से आप्लावित है। वह आचार्यश्री के प्रति जितना श्रद्धानत है, उतना ही उनके आदर्शों के प्रति श्रद्धालु है। इसलिए उसने जनवंद्य और जनता को आस-पास रखा है और वह दोनो के बीच अपने को उपस्थित पाता है। यह मध्य-स्थिति ही शब्द-जगत् में प्रस्तुत पुस्तक है।

जन-जन के बीच का प्रथम भाग सं० २०१५ मे प्रकाशित हुआ था। यह उसका द्वितीय भाग है। अपनी मनोरमता और आचार्यश्री की चरण-रश्मियो के प्रतिबिम्बन से यह पुस्तक सहज ही जन-प्रिय और जन-भोग्य होगी।

—मुनि नथमल

वि० स० २०२१, पौष कृष्णा ९
कुचेरा (राजस्थान)

पूर्व-परिचय

मेरा यह सौभाग्य रहा है कि आचार्यश्री के भारत-भ्रमण मे मैं प्राय. उनके साथ रहा हू। यद्यपि अपने स्वास्थ्य की वाधा से मैं उनका पर्याप्त लाभ तो नही उठा सका, पर फिर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैंने न्यूनाधिक रूप मे उनका कुछ लाभ तो उठाया ही है। यात्रा के इस विद्युत्वेग मे भी मुझे आचार्यश्री मे हिमगिरि-सी निश्चलता के दर्शन हुए। अनेक असुविधाओ के वावजूद भी उनका स्मित उनसे विलग नही हुआ। अपने कर्तव्य के प्रति मैंने उनमे सदैव सजगता का दर्शन किया। उन्हीं विरल-प्रसगो को मेरी साहित्यिक प्रवृत्ति ने यत्र-तत्र घेरने का प्रयत्न किया है। मैं यह कहने का साहस तो निश्चय ही नही कर सकता कि मेरे छोटे-छोटे हाथ हिमाद्रि को अपने अक मे भरने मे समर्थ हो सकेंगे, पर यह मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हू कि उनके व्यास मे आचार्यश्री का जितना भी व्यक्तित्व समाहित हो सका है वह अयथार्थ नही है। सचमुच आचार्यश्री को मापते-मापते मैं स्वयं ही मप गया हू और यह उचित ही है कि मैं अपने वारे मे जो यथार्थ है, उससे अशेप लोगो को परिचित करा दू। इसीलिए मैंने आचार्यश्री के वंगाल प्रत्यावर्तन को शब्द रूप देने का यह लघु-प्रयास किया है। मेरा यह मानस-स्फटिक जितना शुभ्र और अमल है उसी के अनुरूप मैंने अपने आप मे आचार्यश्री को प्रतिविम्वित किया है। अत. इसमे आचार्यश्री के व्यक्तित्व का एकाश और मेरी योग्यता का यथासाध्य आकलन है। अत. आचार्यश्री का यह जीवन-प्रसंग वस्तुत मेरा ही जीवन-प्रसग है अर्थात् मेरे मानस मे आचार्यश्री के प्रति जो अभिन्नता है वही इसमे प्रकट हुई है।

यद्यपि यह प्रत्यावर्तन-यात्रा बगाल की राजधानी कलकत्ता से प्रारभ होती है। पर मैं वहा से उतनी ही दूर आचार्यश्री के साथ आ सका था जितनी दूर कि एक प्रवासी को विदा देने के लिए कोई स्थानीय व्यक्ति आ सकता है। उसके बाद मुझे पुन कलकत्ता लौट जाना पडा। कलकत्ते मे हम जिस कार्य के लिए ठहरे थे वह शीघ्र ही सम्पन्न हो गया था। अत थोड़े दिनो के बाद हमने भी आचार्यश्री के चरण-चिह्नो का अनु-गमन प्रारभ कर दिया। पर इतने दिनो मे तो आचार्यश्री बहुत दूर निकल गये थे। हमारा अनुमान था कि हम दिल्ली तक भी उन्हे नही पकड सकेंगे। पर हमारी योग-क्षेम कामना ने आचार्यश्री की गति मे थोडी मन्दता ला दी। हमने भी लम्बी-लम्बी डगें भरनी प्रारभ की, पर फिर भी हम उन्हे डालमियानगर से पहले नही पकड सके।

अपने कलकत्ते रहने के अवसर पर मैंने आचार्यश्री से एक वर-दान मागा था कि मै लम्बे समय से यात्रा-प्रसग लिखता आया हू और लिखने मे अपना अधिकार भी मान बैठा हू। अत भले ही आज मैं यहां रहा हू पर जब कभी आचार्यश्री के सहवास मे रहू तो मेरा यह अधिकार मुझे मिल जाना चाहिए। तदनुसार उत्तर प्रदेश के सीमा-स्थल पर पहु-चते-पहुचते मुझे पुन' यात्रा-प्रसग लिखने का अधिकार मिल गया। पर जैसा कि मैं पहले कह आया हू अपनी अस्वस्थता के कारण तथा कुछ आत्मातिरिक्त असुविधाओ के कारण भी कही-कही मैं उसे निभा नहीं पाया हू। कई स्थानो पर दूसरे-दूसरे मुनियो ने भी मेरा सहयोग किया है।

अपनी पाद-पीडा के कारण जब मै दिल्ली मे रुक गया था तो उन्होने पीछे से मेरे कार्य-सूत्र को टूटने नही दिया। जिसके परिणाम स्वरूप मैं अविकल रूप से उन यात्रा प्रसगो को यहा ग्रथित कर पाया हू। उसके बाद जब आचार्यश्री ने मेवाड प्रवेश किया तो मैं फिर आचार्यश्री से बिछुड गया और मेरा यह प्रयास मारवाड की सीमा मे ही परिपूर्ण हो

गया। अतः उत्तर प्रदेश से लेकर मेवाड़ प्रवेश तक की घटनाओ का इन प्रसगो मे सग्रह हो पाया है।

यद्यपि इस लम्बी अवधि मे मेरे सामने लिखने की बहुत कुछ सामग्री रही थी। पर मुझे इतना अवकाश ही कहां मिलता था कि मैं उसे जी भर कर लिख सकू। लम्बे-लम्बे विहार ही हमारे दिन का अधिक भाग डकार जाते। आहार के लिए बैठते तो उठने से पहले ही विहार का शब्द-सकेत हो जाता। तब मैं कुछ लिखता भी तो कैसे लिखता? कभी-कभी विहार की थकान मानस में शुष्कता ला देती और मैं लिखने मे अपने आपको असमर्थ पाता। पर फिर भी सकेतो के आधार पर मैंने इसे यथा साध्य पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

आचार्यवर के इन जीवन प्रसगो को लिखते समय स्थूल घटनाए मुझे आकर्षित नही कर सकी है। मैंने इसे इतिहास के ढग से भी लिखने का प्रयास नही किया है। एक मुमुक्षु को आचार्यश्री के व्यक्तित्व मे तथा उनके वातावरण मे जो कुछ ग्राह्य हो सकता है वही मैंने ग्रहण किया है। अत. पाठक इसमे इतिहास खोजने का उतना प्रयास न करें जितना कि आचार्यश्री के व्यक्तित्व को तथा उनके आन्दोलन को खोजने का करें।

—मुनि सुखलाल

२४-१२-५६

आज हम विहार को छोडकर उत्तरप्रदेश मे प्रवेश कर चुके है। विहार और उत्तरप्रदेश की भूमि-विभाजक सीमा-रेखा कर्मनाशा नदी है। भूमि के साथ-साथ ऐसा लगता है जैसे आज तो मानस का भी विभाजन हो चुका है। विहार के लोगो का मानस पटना मे वनता है और उत्तर-प्रदेश का मानस लखनऊ मे। इसलिए उनके सोचने का दृष्टिकोण भी अलग-अलग वनता जा रहा है। मानस के साथ साथ दोनो प्रान्तो की समृद्धि मे भी वडा भारी अन्तर है। विहार जैसा कि हमारी दृष्टि मे आया, एक सूखा प्रान्त है और उत्तरप्रदेश नलकूपो से हरिताभ सजल प्रदेश। लोगो के रहन-सहन मे भी विहार और उत्तरप्रदेश का पार्थक्य स्पष्ट है। हालाकि विहार मे भी इन दो-चार दिनो मे लहलहाते खेत दृष्टिगत होने लगे हैं। पर उत्तरप्रदेश की तुलना मे वह वहुत ही अल्प विकसित है।

उत्तरप्रदेश का प्रवेश-द्वार "नौवतपुर" है। गाव न छोटा है और न वडा भी। पर फिर भी लोगो मे उत्साह है। कुछ लोग फूल माला लिए आचार्य श्री का स्वागत करने के लिए कर्मनाशा के इस ओर खड़े हुए थे। सचमुच ग्रामीण लोगो की भक्ति वड़ी सराहनीय है। कल ही आचार्य श्री जव एक गाव से होकर गुजर रहे थे तो एक वुढिया, जिसकी कमर झुकी हुई थी, दौडती-दौडती आई और दो चवन्नियाँ आचार्य श्री के चरणो मे रखकर वोली—वावा! मुझ गरीव की भी भेंट स्वीकार कीजिए।

आचार्य श्री—बहन ! हम इसका क्या करेंगे ?

बहन—बाबा ! मेरे पास इनसे अधिक देने के लिए कुछ भी नहीं है। मैंने बडे परिश्रम से इनको जोड रखा था। आज आप आ गए हैं तो मैंने सोचा इससे बढकर इनका और क्या सदुपयोग होगा ?

आचार्य श्री—हम तो पैसो की भेंट नही लेते, भोजन की ही भेंट लेते है।

बहन—तो चलिए मेरे घर से थोडे चावल ले लीजिए।

आचार्य श्री—अभी तो हमे बहुत आगे चलना है और दूसरी बात यह है कि हम हमारे लिए बनाई हुई कोई चीज नही लेते है। तुम लोग देरी से भोजन करते हो अभी तुम्हारे घर पर कुछ बना भी नही होगा। अत अभी तो हम यहाँ नही ठहर सकते।

आचार्यश्री ने उसे संतुष्ट करने का प्रयत्न किया पर मैं नही जानता कि वह संतुष्ट हुई या नही। भारत के भक्तिभृत मानस के ये कुछ ऐसे अमूल्य उदाहरण हैं जो प्राय सभी जगह देखे जा सकते है। एक अपरिचित संत के प्रति इतना प्रेम भारतीय मानस की धर्म-प्राणता का स्वतः प्रमाण निदर्शन है।

पद-यात्रा का भी आनन्द है। ईक्षु और सरसो से हरे-भरे खेतो का दृश्य कितना सुहावना होता है ? वायुयान, मोटर और रेल से यात्रा करने वाले केवल उसकी एक झाँकी ही पा सकते हैं। पर पद-यात्री के लिए वह आनन्द पग-पग पर बिखरा पडा है।

स्थान-स्थान पर लोग कोल्हू से ईक्षु रस निकाल कर गुड बना रहे थे। उसकी मीठी-मीठी सुगन्ध दूर से ही पथिक को आमत्रण दे रही थी। हम भी जब कभी उनसे ईक्षु रस मागते तो वे हमे खूब पेट भर कर देते। शहरो मे अगर किसी अपरिचित व्यक्ति से कुछ याचना कर ली जाए तो

वह पूरी होनी कठिन है सो है ही बल्कि कही-कही तो उल्टी झिडक भी सुनने को मिल जाती है। पर गावो मे ऐसी स्थिति नही है। यद्यपि कुछ ग्रामीण भी मुक्त दाता नही होते पर अधिकतर ग्रामीण अपने अतिथि को खाली हाथ नही लौटने देते।

एक स्थान पर सडक से थोडी दूर भट्टी का धुआँ देखकर हम लोग ईक्षु रस लाने के लिए गए तो बीच मे एक नाला आ गया। पानी मे हम लोग चल नही सकते, अत वापिस मुडने लगे। खेत का मालिक कहने लगा—बाबा! मुड क्यो रहे है आइए चाहिए जितना रस ले जाइए।

हमने कहा—भैया! हम लोग पानी मे नही चल सकते अत वापिस जा रहे है। पास मे ही एक मुसलमान भाई खडा था कहने लगा—आप पानी मे नही चले तो मेरी पीठ पर बैठ जाइए। मैं आपको उस पार पहुँचा दूंगा।

हमने उसे समझाया—यह तो एक ही बात हुई भैया! चाहे खुद पानी मे चलो या दूसरे के कधो पर बैठो। जाति, धर्म और प्रान्त से परे मानवता का वह एक ऐसा अनुपम उदाहरण था जो सदा स्मृति को झकझोरता रहेगा। यद्यपि अपनी मर्यादा के अनुसार हम वहाँ ईक्षु रस तो नही ले सके, पर वहाँ जो प्रेम-रस मिला वह क्या कम मूल्यवान था?

'सैयदराजा" मे हम लोग ज्वालाप्रसादजी जालान के मकान मे ठहरे थे। ११ मील का लम्बा विहार होने के कारण विलम्ब काफी हो चुका था। अत आहार से निवृत्त होने तक बारह बजने मे केवल पाच मिनट शेष रह रहे थे। इधर प्रवचन का समय बारह बजे का रखा गया था। बाहर काफी लोग जमा हो गए अत शास्त्रीजी आए और निवेदन किया—"प्रवचन प्रारभ हो जाए तो अच्छा रहे।" आचार्यश्री ने उपस्थित साधुओ से पूछा—क्या आहार कर लिया?

हमने निवेदन किया—अभी तक तो आहार का विभाग ही नही हुआ।

आचार्य श्री ने कहा—"तो फिर मैं ही चलता हूँ।"

आचार्य श्री अभी आहार करके उठे ही थे कि बिना विश्राम किए ही प्रवचन स्थल पर पधार गए। यहाँ एक कालेज है, अत प्रवचन मे छात्रो की उपस्थिति काफी थी। प्रिंसिपल भी प्रवचन सुनने के लिए आया था। ग्रामीणो की सख्या भी कम नही थी। कुछ ग्रामीण तो दो-दो तीन-तीन मील से चलकर आए थे। सचमुच उनमे बडी भारी जिज्ञासा के दर्शन हो रहे थे। प्रवचन के बाद सभी विद्यार्थियो ने मास भक्षण व नशा नही करने की प्रतिज्ञा ली।

यहाँ लोगो मे एक यह जिज्ञासा भी है कि जैन धर्म के क्या-क्या नियम है? क्या हम लोग भी जैन बन सकते है?

आचार्य श्री ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सायकालीन प्रवचन मे कहा—जैन धर्म का पालन करने के लिए किसी जाति, सम्प्रदाय या देश का बन्धन नही है। कोई भी मनुष्य जो सद्गुरु तथा सद्धर्म मे आस्था रखता है वह जैन बन सकता है। बाहरी रूप मे जैन लोगो के लिए मास भोजन तथा मदिरापान का निषेध है।

कर्मनाशा नदी के बारे मे भी यहाँ एक बडी रोचक पौराणिक जन-श्रुत चली आ रही है। आचार्य श्री ने जैसा कि वहाँ सुना था उसका इतिहास बताते हुए कहा—पौराणिक घटना के अनुसार कहते है—त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाने के लिए विश्वामित्र ऋषि की घोर उपासना की थी। ऋषि उससे प्रसन्न हो गए और उसे तीर पर बिठाकर सदेह स्वर्ग की ओर भेज दिया। पर उसे सदेह स्वर्ग आते देखकर इन्द्र बडा चिंतित हुआ। यह स्वर्ग-परम्परा के लिए नई बात थी। अत उसने त्रिशकु को वापिस ढकेल दिया। वह ऋषि के पास आया। ऋषि ने अपने योग बल

से उसे पुन स्वर्ग भेजा । पर इस बार मे भी इन्द्र ने उसे फिर नीचे ढकेल दिया । इस प्रकार दो-तीन बार के कठिन परिश्रम से त्रिशकु के मुह से लार टपक पडी जो कर्मनाशा के रूप मे वह चली । पहले इसका नाम सुकर्मनाशा था जो घिसते-घिसते कर्मनाशा रह गया है। लोगो का विश्वास है कि इसमे स्नान करने से सारे सुकर्म धुप जाते है । अत आज भी कोई उसमे स्नान नही करना चाहता । आस-पास की भूमि भी अनुपजाऊ रूप मे पडी है । क्योकि इसके पानी से खेती भी नही होती । यह एक पौराणिक घटना है। इसे खूब रूप-रग भी दिया गया है । पर न जाने इसमे सत्याश है या नही ? आज के वैज्ञानिक मस्तिष्क ने यहाँ इतने नलकूप सुलभ कर दिए है कि जिनसे वह भूमि अन्न उगलने लगी है । ज्यो-ज्यो शिक्षा का प्रसार बढ रहा है, त्यो-त्यो लोग उसमे नहाने से सुकर्म के नाश होने की बात भूलते जा रहे है ।

प्रवचन की यहाँ अच्छी प्रतिक्रिया हुई । अनेक लोग प्रवेशक अणुव्रती बने । कुछ लोगो ने शराब तथा मास का परित्याग किया ।

●

२५-१२-५६

आज पिछली रात्री मे आचार्यश्री ने सभी साधुओ को सम्बोधित करते हुए कहा—अभी हम लोग यात्रा मे चल रहे है। यात्रा भी ऐसे प्रदेश की जहाँ परिचितो का सर्वथा अभाव ही कहा जा सकता है। इस अवस्था मे अनेक प्रकार की असुविधाओ का होना अस्वाभाविक नही है। वैसे साधु-जीवन स्वय ही असिधारा-व्रत है पर इस समय तो हमारी कठिनाइयाँ और भी बढ जाती हैं। हम जानते हैं कि हमे भोजन भिक्षा से ही मिलता है। यद्यपि अभी हमारे साथ चलने वाले यात्रियो की सख्या भी कम नही है, पर फिर भी हमे यह ख्याल रखना आवश्यक है कि हमारी ओर से उन्हे कोई विशेष कठिनाई न हो। आहार के सम्बन्ध मे स्पष्ट है कि गृहस्थ अपने भोजन मे से सकोच—ऊनोदरी करके हमे शुद्ध-आहार देते हैं। उनकी भावना भी वडी प्रवल रहती है। हम यदि उनका सारा आहार ही ले लें तो उन्हे प्रसन्नता ही होगी। लेकिन हमारी अपनी एषणा की दृष्टि से हमें उनसे इतना आहार नही लेना चाहिए जिससे उन्हे बहुत ऊनोदरी करनी पडे। इसमे कोई हर्ज नही कि हमारे थोडी ऊनोदरी हो जाय। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि साधुओ को कुछ ऊनोदरी तो करनी ही चाहिए। मैं स्वय आजकल थोडी ऊनोदरी करने का प्रयास किया करता हूँ। साधुओ को यह नही सोचना चाहिए कि मैं क्यो ऊनोदरी करूँ? मैं सोचता हूँ कि ऐसी परिस्थिति मे, जबकि हमारी एषणा के परीक्षण का अवसर आता है हमे खुशी से उसका स्वागत करना चाहिए।

दूसरी बात है—इन दिनो हमे ईक्षु रस काफी सुलभ है। मैं नही

चाहता कि इस सुलभता पर कुछ रोक लगाऊँ। जिसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नही पडे वह यथेष्ट ईक्षु-रस ले सकता है और पी सकता है। हमारी परम्परा के अनुसार आचार्य की आज्ञा के विना कोई भी साधु कोई भी वस्तु ग्रहण नही कर सकता। विना आचार्य को दिखाए उसका उपयोग भी नही कर सकता। पर इस समय मैं सवको छूट देता हूँ। मार्ग मे चलते यदि शुद्ध ईक्षु-रस मिले तो कोई भी उसे ग्रहण कर सकता है। हाँ, जो ईक्षु-रस ग्रहण करे वह आकर मुझे ज्ञात अवश्य कर दे। मैं देखता हूँ कुछ साधु इस विधि मे असावधानी करते है। वह सघ की दृष्टि से उपयुक्त नही है। आज्ञा चाहे छोटी हो या वडी हमे उसका निष्ठा से पालन करना चाहिए। मैं आज सवको सावधान कर देता हूँ। यदि इसमे किसी ने प्रमाद किया तो ये प्राप्त सुविधाएँ अधिक दिनो तक नही चल सकेगी।

इसके साथ-साथ एक वात और भी है, जिस स्थान से एक वार रस ले लिया है वहाँ फिर दूसरी वार कोई साधु न जाए। सव साधु एक साथ तो चलते नही है। अत. पीछे आने वाले साधुओ को यह पूछ कर रस लेना चाहिए कि यहाँ से पहले कोई रस ले तो नही गए? वार-वार एक ही स्थान पर जाने से दाता के मन मे साधुओ के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो सकती है। हम किसी पर भार वनना नही चाहते। कोई खुशी से हमे कुछ दे, वही हमे लेना चाहिए।

यद्यपि आचार्यश्री और भी कुछ कहना चाहते थे पर उस समय प्रतिक्रमण मे विलम्ब हो रहा था। अत आचार्यश्री ने उन विषयो को किसी दूसरे दिन के लिए छोड दिया।

चदोली से विहार कर हम मुगलसराय की ओर आ रहे थे। मार्ग मे राजस्थानी लोगो का एक काफिला मिला। उसमे वूढे, वच्चे, स्त्री-पुरुष सभी लोग थे। वे घोडो, गधो तथा ऊँटो पर अपना घर द्वार लादे डाल-

मिया नगर की ओर जा रहे थे। उसमे से कुछ मुखिया लोग आचार्यश्री के पास आये और भक्तिपूर्वक वन्दना की। आचार्यश्री ने उनसे मारवाड़ी भाषा मे बातचीत आरम्भ की तो सहज ही उनमे आत्मीयता-सी पैदा हो गई। मातृभूमि का सम्पर्क पाकर एक बार उनकी चेतना सप्राण हो गई।

आचार्यश्री ने पूछा—क्यो भाइयो ? तुम अभी इधर क्यो आ गए हो ? बस इतने मे तो उनके बधन खुल पडे। मानो घाव पर अगुली लग गई हो। सकरुण शब्दो मे वे अपनी आत्म-कथा सुनाने लगे। कहने लगे—महाराज ! यह कहानी सुनाने के लिए ही तो हम आपके पास आये हैं। सचमुच आज हम चारो ओर से असहाय है। प्रकृति के प्रकोप के कारण दो-तीन वर्षों से लगातार हमारे गाँव मे अकाल पड रहा है। जो अन्न पास मे था वह खा चुके। अब प्राणो के लाले पडने लगे तो हम लोगो को प्राणो से भी प्यारी मातृभूमि को छोडकर इधर आना पड़ रहा है। सोचते हैं इधर कुछ काम-काज मिल जायगा जिससे अपने गुजर-बसर कर दिन काट देंगे। फिर जब अच्छे दिन आएगे तो पुन. अपने गाँव की ओर लौट आएगे। हमारा गाँव मारवाड (जोधपुर डिवीजन) मे है। हम सभी पाँच-चार सौ व्यक्ति जिनमे राजपूत किसान आदि सभी जातियो के लोग हैं, इधर कानपुर मे पद्मपतजी के पास भी गए थे। उन्होने हमारे कुछ साथियो को अपनी मिल मे रख लिया। शेष लोग डालमियानगर की ओर जा रहे हैं। वहाँ कुछ काम मिलने की सभावना है।

आचार्यश्री ने उन्हे अपना सन्देश देते हुए कहा—"मनुष्य पर विपत्तियाँ तो आती ही रहती है। सच्चा मनुष्य वही है जो उनसे विचलित नही होता। यह तो परीक्षा का समय होता है। यदि मनुष्य अपने पौरुष पर विश्वास रखे तो आपत्तियाँ अपने आप दूर हो जाती हैं। अत. तुम्हे

भी निराश और दीन नही होना चाहिए। तुम्हे अपने देश से दूर राजस्थान की गौरवमयी मर्यादा की रक्षा करनी है। आशा है तुम अपने शील और स्वभाव से दूसरे लोगो मे राजस्थान के प्रति स्वस्थ-भावनाए अर्जित करोगे।

आचार्यश्री मुगलसराय मे आकर ठहरे ही थे कि एक रेलवे आफिसर आये और कहने लगे—मैंने कानपुर मे आपके दर्शन किए थे। प्रवचन भी सुना था। आज जब इधर से जाती हुई कारो पर आपका नाम पढा तो मैंने लोगो से पूछा—आचार्य जी कहाँ है? उन्होने बताया कि आप यही हैं। मुझे यह सुनकर बडी खुशी हुई। सचमुच आज का दिन हमारे लिए बड़े ही सौभाग्य का दिन है। पर आप यहाँ आये इसका प्रचार तो हुआ ही नही। यहाँ लाखो लोग बसते हैं उन्हे पता चल जाता तो वे भी आपके उपदेश से लाभ कमा सकते।

आचार्यश्री—"हाँ यह तो ठीक था पर आज सुगनचन्दजी ने हमारे पर अनुकम्पा करके यहाँ ठहराया है। कल ही साहूपुरी से वहाँ के मैनेजर आए थे उन्होने हमे साहूपुरी मे ठहरने का काफी आग्रह किया था। पजाब नेशनल बैंक मे भी हम ठहर सकते थे और भी अनेक स्थान हमे बाजार मे मिल सकते थे। पर सुगनचन्दजी की इच्छा थी कि आज तो हमे एकान्त मे ठहर कर कुछ विश्राम ही करना चाहिए। इसीलिए उन्होंने हमारे यहाँ आने का प्रचार नही किया। यद्यपि हमारे लिए तो लोगो से मिलना ही विश्राम है पर सुगनचन्दजी की भावना ने आज विजय पा ली और हमे एकान्त मे सडक से दूर ही ठहरना पडा।"

मैनेजर—अच्छा! आज तो आप यही ठहरेंगे?

आचार्यश्री—नही। हमे आज शाम को ही बनारस पहुँच जाना है।

मैनेजर—हाँ तो मैं अभी आपके लिए ट्रेन की व्यवस्था करवा देता हूँ।

आचार्यश्री—पर हम तो ट्रेन मे नही चलते ।

मैनेजर—ओहो मैं समझ गया, आप मोटर मे ही जाते है !

आचार्यश्री—नही, हम तो मोटर मे भी नही जाते, पैदल ही चलते है ?

मैनेजर—तो क्या बाहर खडी मोटरो मे आपका सामान जाता है ?

आचार्यश्री—नही । हम अपना सामान अपने कधो पर ही लेकर चलते है ।

मैनेजर—बाहर मोटरें क्यो खडी हैं ?

आचार्यश्री—उनमे तो हमारे साथ चलने वाले यात्री लोग अपना सामान रखते हैं ।

मैनेजर—आप कितना सामान रखते है ?

आचार्यश्री—बस इतना ही जितना आप अभी हमारे पास देख रहे हैं । यही हमारा सारा सामान है ।

मैनेजर—क्या इतने से आपका काम चल जाता है ?

आचार्यश्री—देखिए काम तो चलता ही है । पहनने, ओढने तथा बिछौने का सभी काम इतने कपडो से चल जाता है ।

वे आचार्यश्री के उपदेशो से तो प्रभावित थे ही, आज इतनी कठिन साधना का परिचय पाकर एकदम गद्गद् हो गये और श्रद्धा से उनका सिर स्वय ही नत हो गया ।

शाम को हम लोग बनारस पहुँच गये । अब तक का मार्ग हमारे लिए अपरिचित था । अब तो आगे का मार्ग परिचित ही है । बनारस हम पहले भी आए हुए है । अत यहाँ के लोगो से काफी परिचय है । इसीलिए शाम को काफी लोग एकत्रित हो गये । समागत लोगो मे अधिकतर विद्वान् ही थे, जिनमे वयोवृद्ध पडित गिरधर शर्मा, राजा प्रियानन्दजी, पडित कैलाशचन्द्रजी, प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक श्री मोतीलालजी, श्री मगलदेव

शास्त्री आदि-आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। पडित महेन्द्रकुमारजी का निधन आज जरूर खटक रहा था। पिछली बार जब आचार्यश्री यहाँ पधारे थे तो उन्होने आगे होकर सारे कार्यक्रमो का सयोजन किया था। पर अब तो वे विगत के अतिथि हो चुके थे। सचमुच काशी की विद्वन्मण्डली मे उनका अपना विशेष स्थान था। यहाँ चोरडिया बन्धुओ का सहयोग भी विशेष सराहनीय था।

प्रार्थना के बाद एक छोटा-सा भाषणो का कार्यक्रम रखा गया। क्योकि बडा कार्यक्रम करने का तो आचार्यश्री ने पहले ही निषेध कर दिया था। अभी तो यहाँ रास्ते चलते ही आये हैं। प्रात काल पुन विहार करना है अत सभी लोगो को सूचना भी नही दी गई थी। यहाँ के लोगो का बहुत आग्रह था कि कुछ दिन तो यहाँ ठहरना ही चाहिए। पर आचार्यश्री को अभी तक बहुत दूर चलना है। अत अभी कैसे ठहर सकते हैं ? अभी तो बनारस और औरई सभी समान है। बल्कि आचार्यश्री का तो यह भी विचार था कि बनारस ठहरा ही नही जाय। पर लोगो के अत्यन्त आग्रह से रात-रात का निवास यहाँ स्वीकार किया गया। विद्वानो ने आचार्यश्री का श्रद्धासिक्त स्वरो मे अभिनन्दन किया तथा आचार्यश्री ने यहाँ से चलकर पुन यहाँ आने तक के अपने विशेष अनुभव सुनाये। रात्री मे बहुत देर तक साधकजी तथा सतीशकुमार से बातें होती रही।

यहाँ हासी निवासियो का एक शिष्टमण्डल मर्यादा महोत्सव की प्रार्थना करने के लिए आया था। आचार्यश्री ने उनकी प्रार्थना को ध्यान-पूर्वक सुना पर अभी महोत्सव का निर्णय कर देना जरा कठिन-सा लगता था। महोत्सव के बारे मे इस बार अनेक कल्पनाएँ है। कुछ लोगो का विचार है कि महोत्सव सरदारशहर मत्री मुनि के पास ही करना चाहिए। कुछ लोगो की राय है कि रास्ते मे जहाँ कही भी माघ शुक्ला सप्तमी आ जावे वही महोत्सव कर देना चाहिए। बल्कि कुछ लोग तो इस बात

के भी समर्थक है कि उस दिन दोपहर बारह बजे जहाँ कही भी आचार्यश्री पहुँच जाएँ वही महोत्सव का कार्यक्रम सम्पन्न कर आगे विहार कर देना चाहिए । सभी विकल्पो के सामने कुछ-कुछ कठिनाइयाँ हैं । देखे कौन-सा स्थल इस महापर्व के गौरव से अपने आपको अभिमडित कर पाएगा ।

रात में धर्मशाला मे ठहरे थे । धर्मशाला की कोठरियाँ छोटी-छोटी तो होती ही हैं । अत सारे साधु एक स्थान पर नही सो सके । आचार्यश्री का विचार था कि पिछली रात्री में सारे साधु एकत्र हो जाए पर हमारे लिए स्थान तो नही बनाया जाता ? साधु को तो जैसी सुविधा हो वैसा ही होकर चलना पडता है ।

✪

२६-१२-५६

पश्चिम रात्री मे आचार्यश्री प्राय. ४ बजे करीब उन्निद्र हो जाया करते हैं। तदनुसार आज भी उसी समय उठकर वैठ गए। सरदी की राते बडी तो होती ही हैं अत पहले अयोग-व्यवच्छेदिका तथा अन्ययोग-व्यवच्छेदिका का स्वाध्याय चला। उसके वाद कल्याण मन्दिर स्तोत्र का शिक्षण प्रारम्भ हो गया। दिन मे हम सभी साधु यात्रा मे व्यस्त रहते हैं और रात्री मे आचार्यश्री स्वय हमे स्तोत्रादि कण्ठस्थ करवाते हैं। वहुत सारे साधु आचार्यश्री के चारो ओर वैठ जाते हैं और आचार्य श्री सभी को वाचना देते रहते हैं। इसी क्रम के अनुसार बहुत से साधुओ ने षड्-दर्शन अन्ययोग-व्यवच्छेदिका, अयोग-व्यवच्छेदिका, कल्याण-मन्दिर आदि लघु-स्तोत्र काव्यो को कण्ठस्थ कर लिया है। इस परम्परा से न केवल साधुओ का ज्ञान-कोष ही विवृद्ध होता है अपितु समय का भी सदुपयोग होता है। वे साधु भी जिन्होंने सस्कृत का विशेष अध्ययन ही नही किया आजकल दिन-रात यथा समय सस्कृत-पद्यो का उच्चारण करते देखे जाते हैं। चारो ओर अध्ययन का एक सुखद वातावरण छा गया है। जो साधु अध्ययन नही कर पाता है वह भी एक वार तो उस ओर जुट पड़ता है। सभवतः कोई भी साधु ऐसा नही होगा जो आजकल कुछ-न-कुछ अध्ययन नही करता हो। इसीलिए शरद-ऋतु की राते आजकल छोटी हो गई है। आचार्यश्री कहा करते हैं—-इस व्यस्त यात्रा का हमे इस वार यही लाभ उठाना है। मैंने भी आज आचार्यश्री के पास कल्याण मन्दिर स्तोत्र का शिक्षण प्रारम्भ कर दिया है।

विहार और उत्तरप्रदेश मे शिक्षा का काफी प्रसार है। इसीलिए

प्रायः देहातो मे भी अनेक पढे-लिखे लोग मिल जाते है। विद्यालय भी इधर काफी है। पर विद्यालयो के भवनो की वास्तव मे ही बडी दुर्दशा है। स्कूलो मे फर्नीचर का तो अभाव रहता ही है पर मकान भी प्रायः कच्चे होते है। फर्श तो अधिकाश मकानो का ऊबड़.खाबड तथा अलिप्त ही रहता है। इससे प्राय मकान धूलि-धूसरित से रहते है। पक्के मकानों में कूडा-कर्कट इतना रहता है कि हम लोग निकालते-निकालते थक जाते हैं। सचमुच हम लोग जहाँ ठहर जाते हैं वह मकान एक बार तो साफ हो ही जाता है। आज जिस स्कूल मे हम ठहरे थे वह कूडे-कर्कट से भरा हुआ था। ऐसा लगता था मानो वर्ष भर में वहाँ सफाई करने की निषेधाज्ञा ही रही हो। हम लोग मकान को साफ कर ही रहे थे कि आचार्य श्री भी वहाँ पहुँच गए। हमे देखते ही कहने लगे—तुम लोग अभी तक कूडा निकालना ही नही जानते। रजोहरण को इतना जोर से घसीटते हो कि वह तो टूटे सो टूटे ही पर नीचे यदि कोई जीव आ जाए तो वह भी शायद जीवित नही बचे। और सच तो यह है कि इस प्रकार प्रायः कूडा भी ठीक ढग से नही निकल पाता।

फिर रजोहरण को अपने हाथ में लेकर कूडा साफ करते हुए बोले—देखो इस प्रकार से स्थान को साफ करना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि कभी मैं सारा कूडा-कर्कट साफ करके तुम्हे दिखाऊँ कि किस प्रकार से मकान साफ होता है। साध्वियाँ बडे परिश्रम से रजोहरण बनाती है और तुम लोग उन्हे सहज मे ही तोड देते हो यह अच्छा नही होता। तुम अपने हाथ से रजोहरण बनाओ तो तुम्हे पता चले रजोहरण कैसे बनता है ?

प्रतिक्रमण के पश्चात् हम कुछ साधु लोग आचार्य श्री के उपपात में बैठें थे। विहार की बाते चल रही थी कि दो-तीन छात्र सामने आकर खडे हो गए। कहने लगे—महात्माजी हमे भी कुछ उपदेश दीजिए।

आचार्यश्री ने कहा—उपदेश तो आज नही होगा। आप कुछ पूछना चाहे तो पूछिये।

एक छात्र कहने लगा—क्या अणुव्रत के अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार में हम कुछ सहयोग कर सकते हैं ?

इस अपरिचित स्थान में इस प्रकार का अप्रत्याशित प्रश्न सुनकर सभी लोग आश्चर्य मे पड गए।

आचार्यश्री ने उनसे पूछा—तो क्या आप अणुव्रत से परिचित हैं ?

छात्र—हाँ मैंने उसका कुछ अध्ययन किया है। अणुव्रत-समिति से हमारा कुछ पत्र-व्यवहार भी हुआ है। यह कहते-कहते उसने अपनी जेव मे से कुछ एक पत्र निकालकर कहा—यह देखिए देवेन्द्र भाई का पत्र, यह देखिए हरभजनलालजी शास्त्री का पत्र, यह देखिए सुगनचन्दजी आचलिया का पत्र।

आचार्यश्री ने देवेन्द्र के अक्षरो को पहचानते हुए कहा—हाँ इन्हे तो मैं भी पहचानता हूँ देवेन्द्र के ही अक्षर है।

आचार्यश्री—तुम्हारा नाम क्या है ?

छात्र—मेरा नाम निर्मलकुमार श्रीवास्तव है। मैं वनारस मे B A. मे पढता था। पर आर्थिक सकट के कारण मुझे कालेज छोडना पडा। अव मैं एक स्थान पर सर्विस करता हूँ। अपने दूसरे सहपाठी की ओर सकेत करते हुए वोला—यह है मेरा मित्र जटाशकर प्रसाद। इसी प्रकार उसने अपने अन्य साथियो का भी आचार्य श्री से परिचय कराया। कहने लगा—हम लोग चाहते हैं कि अणुव्रत के प्रसार मे कुछ सहयोग कर सकें।

आचार्य श्री ने उन्हे पहले अणुव्रत का साहित्य पढने का परामर्श दिया तथा फिर अणुव्रत प्रसार के वारे मे अपने विचार वताने को कहा। आचार्यश्री ने उन्हे यह भी कहा—अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक शुद्धि का

ग्रान्दोलन है। अत. इसमे काम करने वाले कार्यकर्ताग्रो का नैतिक होना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। यह कोई ग्रार्थिक ग्रान्दोलन नही है कि जिससे इसकी ग्राड मे कोई ग्रपना ग्रार्थिक हित-साधन कर सके। यह तो जगने ग्रौर जगाने का ग्रान्दोलन है। इसीलिए कोई भी व्यक्ति नि स्वार्थ सहयोग करे तो हम उसका हृदय से स्वागत करते हैं। यहाँ गरीब ग्रौर ग्रमीर का प्रश्न नही है। प्रश्न है लगन ग्रौर परिश्रम का जो व्यक्ति परिश्रम करे उसके लिए ग्रान्दोलन का द्वार सदा खुला पडा है। मैं नही चाहता कि इसमे काम करने वाले कार्यकर्ता ग्रपने-ग्रपने कार्यो को छोडकर ग्राएँ। वल्कि मैं तो यह चाहता हूँ कि जो व्यक्ति जहाँ कार्य करता है उसे वही से ग्रान्दोलन को वेग देना चाहिए। इससे हम ग्रान्दोलन को ग्रनेक वाधाग्रो से सुरक्षित रख सकेंगे।

फिर ग्राचार्यश्री ने उन्हे साधुग्रो से वातचीत करने को कहा। उनसे काफी देर तक ग्रान्दोलन की गतिविधि का परिचय पा लेने के वाद ग्राचार्यश्री ने उन्हे ग्रपने गाव मे ही कुछ काम करने का परामर्श दिया।

ग्राज हम लोग गाव से काफी दूर ठहरे थे। ग्रतः प्रवचन का कार्यक्रम नही रखा गया था। पर थानेदार, पुलिस के जवान, व्यापारी ग्रादि ग्रनेक लोगो से बातें करते-करते काफी रात वीत गई ग्रत ग्राचार्यश्री के लिए तो वह प्रवचन ही हो गया।

२७-१२-५६

कलकत्ते से ५०० मील चल आए हैं पर अभी तक महोत्सव का निश्चय नहीं हुआ है और यह निश्चय करना है भी कठिन। इतनी बड़ी यात्रा में बहुत दूर पहले का निश्चय कर लेना सचमुच बड़ा कठिन काम है। पर बिना लक्ष्य निर्धारण के आखिर प्रतिदिन के विहार का भी क्या अनुमान लग सकता है? इसीलिए आज प्रातःकाल गुरुवन्दन के समय आचार्यश्री ने सभी साधुओं से कहा—अब हमें थोड़ा आगे का लक्ष्य निर्धारित कर लेना चाहिए। क्योंकि उसके बिना हमारी गति मे नियमितता नहीं आ सकती। अभी हमारे सामने मर्यादा-महोत्सव के दो विकल्प हैं। एक तो सरदारशहर और दूसरा कहीं बीच का। सरदारशहर में महोत्सव के साथ-साथ सुखलालजी स्वामी के अनशन का भी एक महत्त्व है। पर उसके लिए चलना भी बहुत अधिक पड़ेगा। वैसे मुझे तो चलने मे कोई बाधा नहीं है पर साधुओं की इस विषय मे क्या राय है मैं यह जानना चाहता हूं। सभी साधुओं ने कहा—जहां आचार्यश्री चाहे हम लोग चलने के लिए तैयार हैं।

आचार्य श्री—यह तो है ही। पर मैं पूछ रहा हू कि इस विषय में उनकी अपनी क्या राय है?

कुछ साधुओं ने महोत्सव के लिए सरदारशहर को उपयुक्त माना। क्योंकि सभी साधु-साध्वी वहां आचार्यश्री की प्रतीक्षा में उत्कंठित खड़े हैं। कुछ साधु इतने लम्बे चलने के पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि इतना लम्बा चलना स्वयं आचार्यश्री के स्वास्थ्य पर भी

अनुकूल प्रभाव नही डालेगा। कुछ देर तक वह मधुर वाक्युद्ध होता रहा। आचार्यश्री वडी शाति से उस विवाद का रस पी रहे थे। पर आज कोई अन्तिम निश्चय नही हुआ।

दूसरे प्रहर आज आचार्य श्री स्वय सब यात्रियो के घर भिक्षा के लिए गए। रात्री के प्रथम प्रहर मे अणुव्रत समिति के उपाध्यक्ष रामचन्द्रजी जैन बनारस से अपने भूतपूर्व प्रोफेसर डा० प्राणनाथ विद्यालकार को अपने साथ लेकर आए। प्रार्थना के पश्चात् उनसे बाते करते-करते प्राय. दूसरा प्रहर ही आ गया। डा० प्राणनाथ एक सुपरिचित इतिहासज्ञ व्यक्ति है। अर्थशास्त्र मे उन्होने डॉक्टरेट किया है। वैसे पहले वे अर्थशास्त्र के प्राध्यापक भी रह चुके हैं। सुमेरियन आदि प्राचीन लिपियो के वे अच्छे विशेषज्ञ है। उनका आचार्यश्री से यह पहला ही परिचय था। पर पहली ही बार मे उन पर आचार्यश्री के व्यक्तित्व की अच्छी छाप पडी। व कहने लगे मैं अपने जीवन में दो ही व्यक्तियो से विशेष प्रभावित हू। पहले व्यक्ति श्री गणेशप्रसादजी वर्णी तथा दूसरे व्यक्ति आचार्य तुलसी है। बल्कि आज मुझे जो शान्ति मिली है वह तो अभूतपूर्व ही है। जैन सस्कृति और धर्म के बारे मे चर्चा करते हुए उन्होने कहा—जैन धर्म भारत का सबसे प्राचीन धर्म है। आर्यो के आगमन से पूर्व यहा जो लोग बसते थे वे सम्भवत जैन ही थे। जैन आगमो पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए उन्होने कहा—जैन आगम विश्व वाड्मय के अमूल्य रत्न है। भाषा की दृष्टि से वे वेदो से भी प्राचीन ठहरते है। वल्कि कुछ आगम तो बहुत ही पुराने है। तथ्य की दृष्टि से भी उनमे अनेक रत्न भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए वृहद् कल्प सूत्र को ही लें, अगर वह मेरे सामने नही होता तो मेरा थीसिस ही अधूरा रह जाता। वास्तव मे ही उनमें इतिहास की इतनी सामग्री भरी पडी है जो अपरिमेय ही कही जा सकती है। अब उनके अन्वेषण का अवसर आया है अत आपको इस विषय पर ध्यान देना चाहिए।

पुद्गल शब्द का अनुचिन्तन करते हुए उन्होने बताया—यह शब्द बहुत ही प्राचीन है। इसकी जो "पूरणगलनधर्मत्वाद्-पुद्गल" यह व्युत्पत्ति की जाती है, यह तो बहुत ही अर्वाचीन है। मेरे विचार से इसका मूल 'वुत-गल' ऐसी व्युत्पत्ति मे होना चाहिए। 'वुत' ही अपभ्रष्ट होता होता आज पुद्गल बन गया है ऐसा लगता है। इसी प्रकार जिन' शब्द भी सभवत. 'सिन' से बना है। सुमेरियन भाषा मे 'सिन' का अर्थ चन्द्रमा होता है। चीनी भाषा मे भी यह इसी रूप मे प्रयुक्त हुआ है। 'जयतीति जिन.' यह व्युत्पत्ति बहुत बाद की मालूम देती है। यदि इस प्रकार हम एक-एक शब्द की आलोचना करें तो बहुत सारे तथ्य उद्घाटित हो सकते हैं। आवश्यकता है इस दृष्टि से आगमो पर शोधपूर्ण कार्य हो। आचार्य श्री ने जब उन्हे यह सकेत दिया कि आपको इस छिपी हुई सामग्री को प्रकाश मे लाना चाहिए। तो उन्होने कहा—मेरी इच्छा है कि मैं जैन आगमो पर ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ अन्वेषण करूँ। फिर मुनि श्री नथमलजी ने उन्हे विस्तार मे आचार्य श्री के सान्निध्य मे चलने वाले आगम शोध कार्य का परिचय दिया जिससे वे बहुत प्रभावित हुए।

०

२८-१२-५६

सडक पर से जब हमारा लम्बा काफिला गुजरता है तो लोगो के मन में अनेक प्रकार के प्रश्न पैदा हो जाते हैं। न जाने मनुष्य के मन मे क्यो इतनी जिज्ञासाए रहती हैं कि वह प्रत्येक बात का मूल खोजना चाहता है। सबसे अधिक प्रश्न जो आजकल हमे पूछा जाता है वह है आप कहाँ से आए हैं और कहाँ जाएगे ? आने के लिए तो हम कह देते है कि हम कलकत्ते से आए हैं पर जाने के लिए क्या कहा जाए ? भला जिनका अपना कोई स्थान नही, उनके गन्तव्य के बारे मे क्या कहा जा सकता है ? इसीलिए इसका उत्तर देने मे हमे वडी कठिनाई हो जाती है। यदि यह कहा जाए कि हमारा कोई स्थान नही होता तो प्रश्नकर्ता को इसका विश्वास होना कठिन हो जाता है। फिर एक के बदले तीन प्रश्न होते हैं। इतना समय कहा रहता है कि हम इतनी लम्बी प्रश्न सूची का उत्तर देते चले जाए। यदि हम यह सोच लें कि आज प्रत्येक जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देना है तो मैं सोचता हू अगली मजिल वडी लम्बी हो जाएगी। सुबह के बदले शाम तक भी अगले गाव पहुचना कठिन हो जाएगा। अत. लोगो को थोडे मे निपटाने के लिए कोई साधु अपने अस्थायी गन्तव्य दिल्ली की ओर सकेत देता है तो कोई राजस्थान की ओर। पर इसमे भी वडी उलझन है। साईकिल पर बैठे एक व्यक्ति ने मुझे पूछा—स्वामीजी आप आगे कहा जाएगे ?

मैंने कहा—अभी तो हम दिल्ली जा रहे हैं।

व्यक्ति—यह क्या ? आपके पिछले साथी तो कह रहे थे कि हम राजस्थान की ओर जा रहे हैं और आप कहते हैं दिल्ली जाएगे।

मैंने उसे समझाया—भैया ! पहले हम दिल्ली जाएगे और फिर राजस्थान जाएगे ।

व्यक्ति—तो क्या आप राजस्थान तक पैदल ही जाएगे ?

मैं—हा, हम हमेशा जीवन भर पैदल ही चलते है ।

व्यक्ति—राजस्थान क्यो जाते हैं ? क्या वहा आपका घर है ?

मैं—नही हमारा घर कही होता ही नही । हम तो जीवन भर घूमते ही रहते है । सारा ससार ही हमारा घर है ।

वह तो विचारा विस्मय-भरी दृष्टि से देखता ही रह गया । इतना ही नही अपितु सडक पर प्रतिदिन कडा परिश्रम करने वाले मजदूर भी यह सुनकर कि हम जीवन भर पैदल चलते हैं, हैरान रह जाते है । सहसा उन्हे विश्वास ही नही होता । वे समझते है महात्माजी हमारे साथ मजाक कर रहे हैं ?

आज भी एक जगह कुछ मजदूर पूछने लगे महात्माजी आप किधर जा रहे है ।

हम—जिधर चले जाए ।

मजदूर—यह क्या ? जिधर चले जाए, इसका क्या मतलब है ?

हम—इसलिए कि हमारा कही घर नही होता । हम जिधर चले जाए चले जा सकते है ।

एक दो दिन पहले हम चल रहे थे कि अचानक एक ट्रक आकर हमारे सामने रुक गया । ड्राइवर नीचे उतरा और कहने लगा—स्वामीजी ! पैदल क्यो चलते है ? हमारे ट्रक मे बैठ जाइए । हम आपको अगले गांव पहुचा देंगे ।

आचार्य श्री ने हसते हुए कहा—भैया ! आज तो तुम हमे पहुचा दोगे पर कल हमे कौन आगे ले जाएगा ? हमारा तो जीवन भर चलना जो ठहरा । हम पैदल चलते है और इसलिए तुम्हारे ट्रक मे नही बैठेंगे ।

दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मील बल्कि कभी-कभी तो इससे भी अधिक चलना पडता है। अत गति मे स्फूर्ति तो रखनी ही पडती है। बोझ-भार हमारे कधो पर देखकर कुछ लोग समझते है कि महात्माजी स्टेशन जा रहे हैं, सोचते हैं कही गाडी निकल नही जाए। इसीलिए तेज चलते हैं।

एक भाई ने कहा—महात्माजी इतनी जल्दी क्यो करते है गाडी छूटने मे तो अभी बहुत देरी है।

उसे समझाया—भैया! हमारी गाडी तो छूट चुकी। अब लेट न हो इसलिए तेज चल रहे है।

वह भाई—क्या मतलब आपका?

हम—यह है कि हम तो पैदल ही चलते हैं। अगले गाव जल्दी पहुँच जाए इसलिए स्फूर्ति से चल रहे हैं।

एक-दो साधुओ को छोडकर प्राय सभी साधु खूब तेज चलते है। कुछ श्रावक लोग तो हैरान रह जाते है कि आचार्य श्री कितने तेज चलते हैं? हम तो दौडकर भी उनका साथ नही कर सकते। इसीलिए कुछ लोग तो पैदल चलने से घबरा जाते है। कुछ बहने बडी साहसी हैं। धीरे चलती हैं तो भी सवारी पर नही बैठती। कभी-कभी तो वे पहुँचती हैं इतने मे हम फिर चलने की तैयारी कर लेते है। सचमुच आचार्य श्री की पदयात्रा ने अनेक लोगो के मन मे पैदल चलने का उत्साह भर दिया है। इसीलिए बहुत से सम्पन्न लोग भी पैदल चलने मे अपना गौरव समझते हैं। जो पैदल नही चल सकते वे भी चाहते तो यही हैं कि पैदल चलें। इसलिए कुछ लोग तो ठेठ कलकत्ते से पैदल ही चल रहे हैं। उनमे दौलत-राम जी छाजेड, जसकरणजी दूगड तथा पानी बाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

रात्रिकालीन विश्राम आज भी हमने एक पुलिस थाने मे ही लिया था। उत्तरप्रदेश सरकार ने हमारे लिए सुविधा कर दी है कि जहा भी

जाए वहा स्कूल तथा थाना आदि मिल सकते है। सब थानो पर अध्या-देश पहुच गए है कि हम चाहे तो हमे थाना या स्कूल मे ठहरा दिया जाए। इसलिए जहाँ भी जाते है थानेदार आदि पहले ही थाने के आगे खडे मिलते हैं। हम सभी जगह थानो मे ही नही ठहरते पर अपनी ओर से उनकी तैयारी रहती है। कही-कही तो हमे जेल घर मे भी ठहरना पडता है। आज भी हम जेल घर मे ही सोए थे।

आचार्य श्री ने हँसते हुए कहा—आज तो तुम जेली हो गए। सचमुच परिस्थिति का कितना अन्तर पड जाता है। एक तो अपराधी जेल मे जाता है और एक साधु जेल मे जाता है। कितना अन्तर है दोनो मे। एक मुक्त भाव से जाता है और दूसरा अपराधी बन कर जाता है।

थानेदार आज कही दौरे पर गया हुआ था। अत काफी देर से लौटा। पर उसका लडका व्रजेन्द्रकुमार बडा ही चपल शिशु है। कई बार आचार्य श्री के पास आता और निडर होकर बातें कर भाग जाता। आचार्य श्री उसे रोकना चाहते तो भी नही रुकता। आचार्य श्री भी उसके साथ बिल्कुल शिशुवत् बाते करने लगे।

एक बार वह कहने लगा—गुरुजी! भजन सुनाइये। आचार्य श्री ने कहा—थोडी देर मे अभी भजन शुरू होगा।

व्रजेन्द्र—नही अभी सुनाइये।

आजार्य श्री—अभी थोड़ी देर मे सुनाएगे।

व्रजेन्द्र—नही अभी सुनाइए।

बाल-हठ के कारण आखिर आचर्य श्री को ही उसकी बात माननी पडी। सदा के नियमित समय से पहले ही प्रार्थना का शब्द हो गया। सब साधु आकर आचार्य श्री के पास बैठ गए।

व्रजेन्द्र—नही, खडे होकर भजन सुनाइए।

आचार्य श्री ने मुनि सुमेरमलजी को खडा किया और प्रार्थना प्रारंभ

हो गई । व्रजेन्द्र ने बड़ी भक्ति से प्रार्थना सुनी । फिर कहने लगा—वहिनों से भजन करवाइए ।

आचार्य श्री ने पारमार्थिक शिक्षण संस्था की बहिनो को भजन गाने के लिए कहा वे भजन गाने लगी तो व्रजेन्द्र कहने लगा—नही खडे होकर भजन करवाइये । आखिर उन्हे भी खडा होना पडा । वहिनें भजन गाने लगी और वह पास पडी कुर्सी पर ताल देने लगा । शुद्ध ताल तो वह क्या दे सकता था पर उसकी चेष्टा यही थी कि मजीरे वजाने की आकृति वनाई जाए और तवला वजाया जाए । फिर कहने लगा—तवला वजता है न ! इतने मे थानेदार भी आ गये । कहने लगे—व्रजेन्द्र ! क्यो व्यर्थ ही महात्माजी को तग करते हो ?

आचार्य श्री ने कहा—नही मुझे इसमें जरा भी कष्ट नही होता है । यह तो उल्टा मनोविनोद है । आचार्य श्री जानते हैं कि वच्चो की भावनाओं को तोड़ना नही चाहिए । उनके प्रश्नो का भी बरावर उत्तर देते रहना चाहिए । इससे वच्चे मे हिम्मत बढती है । वहुत से माता-पिता अपने वच्चो से अघा जाते है । वे उनकी जिज्ञासाओ का समाधान नही देते । उसकी चचल तथा शिष्ट प्रवृत्तियो को रोक देते है इससे बच्चे का स्वस्थ विकास नही हो पाता ।

वच्चो का पालन-पोषण भी एक कला है । आचार्य श्री ने अपने हाथो से अनेक वाल-साधुओ का सरक्षण किया है । अत. उनमे मातृ-हृदय का वात्सल्य भी उतनी ही मात्रा मे है जितनी मात्रा मे पितृ-हृदय का अनुशासन । दोनो मिलकर उनके नेतृत्व को उदात्त वना देते है ।

थानेदार धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी हैं । उनकी पत्नी भी उतनी ही श्रद्धालु हैं । इसलिए व्रजेन्द्र में भी धार्मिक सस्कार जागृत होने लगे है । वह प्राय. हरि कीर्तनो मे ले जाया जाता है । अत. भजनो के प्रति उसकी स्वाभाविक ही रुचि उत्पन्न हो गई । प्राय. वच्चे योग्य सरक्षण से विकास

कर सकते है पर अधिकांश के भाग्य मे वह लिखा ही कहा होता है ? पिता लोगो को काम-काज से अवकाश नही मिलता, माताए अशिक्षित तथा डरपोक होती हैं। वे क्या बच्चो के जीवन का निर्माण कर सकती हैं ? यदि बच्चो को सस्कारी बनाना है तो पहले स्त्रियो को सुशिक्षित बनना पड़ेगा।

२६-१२-५६

ब्राह्म मुहूर्त मे स्वाध्याय चल रहा था। अन्य-योग-व्यवच्छेदिका के तेरहवे श्लोक मे हम लोग "तद् दु ख माकालखलायित वा, पचेलिम कर्म भवानुकूल" ऐसा पाठ पढा करते है। तदनुसार आज भी वही पाठ पढा गया। यद्यपि इसका अर्थ ठीक से तो नही बैठता था पर तो भी ठोक-पीट कर किसी प्रकार से अर्थ तो विठाना ही पडता था। किन्तु आज स्वाध्याय करते-करते मुनि श्री नथमलजी के एक नया ही अर्थ ध्यान मे आ गया। उन्होने कहा—यहा 'तद् दु षमाकाल खलायित वा पचेलिम कर्म भवानुकूल' ऐसा पाठ उपयुक्त लगता है। पुरानी लिपि के अनुसार मूर्धन्य 'ष' और 'ख' को एक ही प्रकार से लिखा जाता था तथा कही-कही दोनो का उच्चारण भी 'ख' की ही तरह होता था। इसीलिए प्रतियो मे 'ष' को 'ख' बना दिया गया। इसी तरह 'दुषमा' को 'दुखमा' बना दिया गया और फिर वह सर्व प्रचलित हो गया ऐसा लगता है।

आचार्य श्री ने कहा—हा ठीक तो यही लगता है। मुझे भी कुछ-कुछ रडकन रहा करती थी, आज यह अर्थ विल्कुल ठीक बैठ गया है। भाषा और लिपियो मे किस प्रकार परिवर्तन आ जाते है। फिर उनसे अर्थ का अनर्थ कैसे हो जाता है इसका यह उदाहरण है। न जाने इस प्रकार कितने स्थानो पर भ्रातिया होती होगी। पर मनुष्य के ज्ञान को भी धन्यवाद है कि वह फिर से उन्हे सुधार लेता है। यह कहते-कहते आचार्य श्री शब्द सागर की गभीरिमा मे गोते लगाने लगे।

प्रात काल मार्ग मे एक जगह कुछ ईक्षु-रस मिला था। आचार्य श्री

रस पी ही रहे थे कि इतने मे हम भी वहा पहुच गए। साधु काफी थे और रस थोडा था। अत हमने विचार किया कि आगे निकल जाएं। हम यह सोच ही रहे थे कि इतने मे एक साधु विना रस पीए ही आगे निकलने लगे। आचार्य श्री ने उन्हे देखा तो वापिस वुलाया और कहा—विना रस पीए ही क्यो जाते हो ?

उन्होने कहा—यो ही मैंने सोचा रस थोडा ही है।

आचार्य श्री—थोडा है तो थोडा-थोडा पी लो। हर वस्तु को वाट कर खाना चाहिए। "असविभागी न हु तस्स मोक्खो' जो सविभाग नही करता उसे मोक्ष नही होता।

हमने सोचा अव हमे तो आगे नही जाना है। जितना रस मिला उसको पुण्य-प्रसाद मानकर पी गए। पीछे पता चला कि आचार्य श्री ने भी रस की कुछ ऊनोदरी की थी। मन मे आया आचार्य श्री यदि थोडा-सा अधिक रस पी लेते तो दूसरो के कितनीक कमी रहती। पर नेतृत्व की कसौटी पर चढने वालो को इन छोटी-छोटी वातो का भी पूरा खयाल रखना पडता है।

कलकत्ते से चलने के वाद पूरे दिन भर तो विरले ही स्थानो पर ठहरे हैं। प्राय. दिन मे दो विहार करते हैं। विहार भी छोटे-छोटे नही होते। आज भी दो विहार करने थे। पहला पडाव गोपीगज मे था और दूसरा पडाव ऊझमुगेरी मे। दोनो मे ८॥ मील की दूरी है। वीच मे कोल्हापुर नामक एक गाव और है। वैसे गाव तो और भी वहुत हैं पर कोल्हापुर मे एक विशेष वात है। वहा एक व्यक्ति रहता है। जिसका नाम गोवर्धन है। गोवर्धन कई वर्षो से तेरापथी महासभा का कार्यकर्ता है। चातुर्मास मे वह कलकत्त ही था। अत हम लोगो से उसका गहरा परिचय हो गया था। अभी छुट्टी मे वह अपने गाव आया हुआ था। उसने जव सडक पर दौडती हुई मोटरो पर आचार्य श्री का नाम पढा तो

वह गोपीगज आया और निवेदन किया कि आज तो आपको हमारे गाव मे ठहरना ही होगा।

आचार्यश्री ने उसे सारा प्रोग्राम बताया और कहा—तुम ही बताओ आज हम तुम्हारे गाव मे कैसे रुक सकते हैं ?

उसने आग्रह किया—कुछ भी हो आज तो आपको हम गरीबो पर दया करनी ही होगी। यह ठीक है कि हमारे गाव मे महल नही हैं। पक्के मकान भी नही हैं, टूटी-फूटी झोपडिया है। पर आपको उन्हे पवित्र करना ही होगा। हम सारे साधुओ की तथा यात्रियो की व्यवस्था कर लेंगे। बहुत देर तक यह आग्रह अनुनय चलता रहा। अन्त मे बीच का मार्ग निकाला गया कि थोडी देर के लिए आचार्यश्री सडक पर रुक जाए। गाव के सभी लोग वहा आकर दर्शन कर ले तथा आचार्यश्री उन्हे थोड़ा उपदेश दें। गोवर्धन सतुष्ट हो गया। तदनुसार आचार्यश्री विहार करते हुए कुछ देर के लिए सड़क पर ठहरे और लोगो को उपदेश दिया। यहा लोग अधिकतर शाकाहारी ही है। अत. आचार्यश्री ने उन्हे प्याज, बैंगन आदि अनन्तकाय तथा बहुबीज शाक खाने का त्याग दिलवाया। कुछ बहनो ने महीने मे दो दिन रात्री-भोजन का भी परित्याग किया।

प्रवचन के बाद ग्रामवासियो ने फिर निवेदन किया—आचार्यजी कुछ देर के लिए तो हम गरीबो के घरो को भी पवित्र कीजिए।

आचार्यश्री ने कहा—भाइयो! हमारे लिए गरीब और धनवान का कोई भेद नही होता। अभी समय बहुत थोडा है अत हम यहा अधिक नहीं ठहर सकते। अन्यथा मुझे आपके गाँव मे जाने से खुशी ही होती।

ग्रामवासी—महाराजजी कम-से-कम गन्ने तो लीजिए और वे अपने साथ लाये हुए गन्ने के बडे-बडे गट्ठरो को उठाने लगे।

आचार्यश्री—हम गन्ने नही ले सकते। क्योकि इसमे सार तो कम होता है। निस्सार फेंकने की चीज अधिक होती है।

ग्रामवासी—तो रस ले लीजिए। हमारे बहुत सारे कोल्हू चलते हैं। कुछ लीजिए।

उनके अत्यन्त आग्रह पर आचार्यश्री ने साधुओ को उनका रस लेने के लिए भेजा। स्वय आचार्यश्री ने भी उनका रस पिया। पर वह आचार्यश्री के प्रकृति के अनुकूल नही रहा। ऊझमुगेरी आते-आते आचार्य श्री का शरीर भारी हो गया और थककर चूर हो गए। पर फिर भी आचार्यश्री ने किसी को बताया नही। क्योकि आचार्यश्री जानते थे कि इस समय तो हिम्मत का काम है। यदि मैं ही हिम्मत हार दूगा तो साधुओ को बड़ी चिन्ता हो जाएगी। इस समय एक दिन रुकना भी भारी हो जाएगा। पर यह बात छिपाने से कब छिपती है। रात मे आचार्यश्री को प्रतिश्याय हो गया और प्रात काल वदना के समय आचार्यश्री ने इस यात्रा मे ईक्षु रस पीने का त्याग कर दिया।

३०-१२-५६

प्रात.काल गुरुवन्दन के समय आचार्यश्री ने सभी साधुओ को शिक्षा देते हुए कहा—मैं जानता हूँ आजकल साधुओं को बहुत चलना पडता है। चलने से वे थक भी जाते हैं। थकने पर गर्म पानी से पैर भी धोना चाहते हैं। पर यह सभव नही है कि सभी साधु गर्म पानी से पैर धो सकें। क्योकि पानी तो हमे आखिर गृहस्थो से ही मिलता है। हमारे लिए वे पानी गर्म कर नही सकते। कर भी दें तो हम ले नही सकते। अत अच्छा हो सभी साधु पैर धोने का प्रयत्न नही करें। जो साधु बूढे है या अधिक थक जाते है उनको तो मैं निषेध कैसे कर सकता हूँ? पर सशक्त साधु पैर न धोए तो अच्छा रहे। हम यदि गृहस्थो का सारा पानी ले आवें तो वे भी थके हुए आते है वे फिर पैर कैसे धोयेंगे? कुछ वे सकोच करते हैं तो कुछ हमे भी सकोच करना चाहिए।

आज शाम को हम इलाहाबाद पहुँच गये। वहाँ निरजनदास सेठ के मकान पर ठहरे। यहा जैन-मिलन के सदस्यो ने अच्छा स्वागत किया। यद्यपि जैन मिलन के सदस्य अधिकतर दिगम्बर ही है पर फिर भी उनको आचार्यश्री के प्रति अगाध श्रद्धा है। वे लोग काफी दूर तक स्वागत के लिए सामने भी आये थे। निरजनदासजी भी वैसे वैदिक धर्म मे विश्वास करते है। पर सम्पर्क मे आकर वे भी काफी आकृष्ट हो गए है। जब हम पिछली बार आये थे तो लाला गिरधारीलालजी के माध्यम से उनसे सम्पर्क हुआ था। उस समय भी हम उनके सिनेमागृह के मकान के ऊपर ही ठहरे थे। इस बार उन्होंने स्वय अपने मकान का कुछ भाग खाली कर दिया था इसलिए हम उनके घर पर ही ठहरे।

रात्री मे स्वागत का एक छोटा-सा कार्यक्रम रखा गया था। यहा: पर भी परिचित लोगो का काफी आवागमन रहा। नगरपालिका के अध्यक्ष श्री विश्वभरनाथ पाण्डेय ने स्वागताध्यक्ष के पद से बोलते हुए कहा— ई० सन् की पहली शताब्दी और उसके बाद के हजारो वर्षो तक जैनधर्म मध्यपूर्व के देशो मे किसी-न-किसी रूप मे यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम को प्रभावित करता रहा है। प्रसिद्ध जर्मन इतिहास लेखक 'वानक्रेमर' के अनुसार मध्यपूर्व मे प्रचलित 'समानिया' सम्प्रदाय श्रमण शब्द का अपभ्र श है। इतिहास लेखक जी० एफ० मूर लिखता है—हजरत ईसा के जन्म की शताब्दी से पूर्व ईराक, श्याम और फिलस्तीन मे जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैकडो की सख्या मे चारो ओर फैले हुए थे। 'सिहायत नाम एनासिर' का लेखक लिखता है कि इस्लाम धर्म के कलन्दरी तवके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था। कलन्दर चार नियमो का पालन करते थे—साधुता, शुद्धता, सत्यता और दरिद्रता। वे अहिंसा पर अखण्ड विश्वास रखते थे। एक बार का किस्सा है। दो कलन्दर मुनि बगदाद मे आकर ठहरे। गृह स्वामी की अनुपस्थिति मे मुनियो के सामने शतुरमुर्ग उसका हीरो का बहुमूल्य हार निगल गया। जब गृह स्वामी आया तो उसे हार नही मिला। स्वभावत ही उसे मुनियो पर अविश्वास हो गया। उसने मुनियो को बहुत कुछ पूछा पर मुनि कुछ नही बोले। किन्तु वे जानते थे कि यदि हम सही घटना बता देंगे तो गृह स्वामी इसी समय शतुरमुर्ग को मार डालेगा। जिसका पाप हमे लगेगा। अत वे कुछ भी न बोले। उन्हे मौन देखकर गृह स्वामी का सन्देह और भी पुष्ट हो गया। समझाने-बुझाने से काम चलता नही देखकर उसने मुनियो को पीटा भी। पर फिर भी मुनि कुछ नही बोले। अन्त मे क्रुद्ध होकर उसने मुनियो को जान से मार डाला। इधर कुछ ही देर बाद मे शतुरमुर्ग ने विष्टा किया जिसमे हार अपने आप निकल आया। गृह स्वामी ने उसे देखा तो अवाक् रह गया। उसे

बड़ा दुःख हुआ कि उसने निरपराध मुनियों को मार डाला। पर अब क्या हो सकता था? उसे कलन्दर मुनियो की तपश्चर्या पर बड़ी श्रद्धा हुई।

आगे आचार्यश्री का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा—आचार्यश्री तुलसी भी उसी जैन परम्परा के एक आचार्य हैं। अणुव्रत-आन्दोलन के रूप मे एक असाम्प्रदायिक आन्दोलन चलाकर तो आपने भारत मे ही नही अपितु दूर-दूर के देशो तक प्रख्याति पा ली है। आज इस तीर्थ-स्थान प्रयाग मे आचार्यश्री का स्वागत कर हम अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे है।

तत्पश्चात् 'गोस्वामी' मासिक पत्र के सम्पादक महादेव गिरी ने आचार्यश्री को उसका 'महात्मा विशेषाक' समर्पित किया।

३१-१२-५६

सूर्योदय होते ही यहा से प्रयाण कर आचार्यश्री राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन के घर पधारे। टण्डनजी काफी दिनो से अस्वस्थ होने के कारण यहा आने मे असमर्थ थे। अत आचार्यश्री स्वय ही उनके घर पधार गये। वहा कुछ देर तक ठहर कर आचार्यश्री ने उन्हे शान्तसुधारस सस्कृत गेय काव्य की कुछ गीतिकाए सुनाई। मुनिश्री नथमलजी ने वहा कुछ आशु काव्य भी किया। टण्डनजी का जीवन अत्यन्त सादा तथा सरल है। हिन्दी के तो वे एक प्रवलतम समर्थक हैं। हिन्दी की छोटी-सी अशुद्धि भी उन्हे सह्य नही होती। आज भी जब पारमार्थिक शिक्षण सस्था की शिक्षार्थिनी वहिनो ने अपने सधे हुए समवेत स्वरो मे आचार्यश्री द्वारा रचित एक गीतिका उन्हे सुनाई तो उन्होने झट से उसमे से एक त्रुटि को पकड लिया। बहने गा रही थी—

"अणुव्रत है सोया ससार जगाने के लिए,
जन-जन मे नैतिक निष्ठा पनपाने के लिए।"

वे पद्य के अन्तिम पद 'लिए' मे 'लि' को दीर्घ ले रही थी टण्डनजी ने उनकी ओर लक्ष्य कर कहा—वहिने 'लिए' मे 'लि' को दीर्घ क्यो ले रही हैं। इतनी अस्वस्थ अवस्था मे भी उनकी जागरूकता को देखकर हम सवको वडा आश्चर्य हुआ। यद्यपि हम सव प्रतिदिन यह पद्य सुना करते थे, पर हमारा ध्यान उधर नही गया। आज अचानक इस त्रुटि की ओर टण्डनजी ने सवका ध्यान आकृष्ट कर लिया। फिर तो वहिनो ने अपना उच्चारण शुद्ध कर पुन उस गीतिका को दोहराया। टण्डनजी मानो हर्ष-पारावार मे हिलोरे लेने लगे। उनको यह गीत बहुत ही रुचिकर लगा। कहने लगे—क्या यह प्रकाशित नही हुआ है? सह-यात्रियो ने

उन्हें बताया—'अणुव्रत गीत' नाम से आचार्यश्री का यह गीत-सग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है। दौलतरामजी छाजेड इसकी एक प्रति हमेशा अपने पास रखते है। उसको निकाल कर उन्होने टण्डनजी के हाथो मे समर्पित कर दिया।

टण्डनजी कहने लगे—इसका मूल्य क्या है ?

दौलतराम—मूल्य पचास नए पैसे हैं पर मेरा मूल्य तो अदा हो चुका। आपके हाथो मे जाकर अवश्य ही यह अपने मूल्य से अधिक लाभोपार्जन करेगी।

सचमुच टण्डनजी छोटी-छोटी बातो पर बडा ध्यान देते हैं। अतिथि सत्कार तो मानो उनका सहज गुण है। पिछली बार भी जब हम यहाँ आये थे तो उन्होने हमे बिना भिक्षा लिए नही जाने दिया था और कहने लगे—कुछ भिक्षा लीजिए।

आचार्यश्री ने कहा—अभी दो बजे आपके यहा क्या भोजन बना होगा ?

टण्डनजी—'मैंने आपके प्रवचन मे सुना था कि आप अपने लिए बनाई हुई वस्तु नही लेते। इसलिए हमने जो अपने खाने के लिए बनाया था उसी मे से आपको दे रहे है। मैंने सोचा—आपको दिए बिना क्या भोजन करूँगा ? इसलिए अभी तक मैंने भोजन ही नही किया है। मुझे भूखे रहकर भी बडी खुशी होगी यदि आप मेरा सारा भोजन लेकर मुझे कृतार्थ करेंगे।"

सचमुच इससे बढकर अतिथि-सत्कार और क्या होगा ? इसलिए उस दिन भी हमे उनके घर से भिक्षा लेनी पडी थी और आज भी उनके यहा कुछ भिक्षा लेनी ही पडी। उनका भोजन बडा सीधा-सादा तथा सात्त्विक होता है। गुड उनका विशेष प्रिय खाद्य है। खादी के तो वे दृढतम आग्रही हैं। हमे भी उनके घर से खादी का एक थान लेना पडा।

●

१-१-६०

सन् के हिसाव से आज नए वर्ष का नया दिन है और हमारे लिए नया गाव है। नये लोग है। नये प्रश्न है। नई समस्याए है। आकाश मेघाच्छन्न है और हम चले जा रहे है। वहुत कुछ विचार मन मे उठ रहे है पर इतना समय कहा है जो उन सवको लिखा जा सके। विहार के वाद जो थोडा वहुत समय मिलता है उसमे भोजन पानी सव करना पडता है। भोजन के साथ-साथ कुछ कार्यभार भी वढ जाता है। अपने पात्रो को साफ करना पडता है। फिर उन वस्त्रो को (लुहना) साफ करना पडता है जिनसे पात्र साफ करते हैं। दैनिक चर्या तो चलती ही है। थोडा वहुत विश्राम करना चाहते हैं तो आचार्यश्री कह देते है, तैयार हो जाओ, चलना है। अभी-अभी ११ मील चलकर आये है तीन और चलना है। साथ-ही-साथ आचार्यश्री ने अध्ययन का एक आकर्षण और वढा दिया है। अत. विश्राम भी गौण हो जाता है। चारो ओर साधुओ के हाथो मे षड्दर्शन, कल्याण-मन्दिर आदि के पत्र देखने को मिल सकते है। सचमुच यह एक चलता-फिरता 'विश्वविद्यालय' है। ये सव कल्पनाए जव मन मे आती है तो मन-मयूर हर्ष विभोर होकर नाचने लगता है। शारीरिक कष्ट तो है ही पर 'घुमक्कडी' का आनन्द भी कम नही है।

विहार करके चले आ रहे थे कि वीच मे वर्षा आ गई। आचार्यश्री तो वीच के एक थाने मे ठहर गये थे। साधु लोग आगे चल पडे। भला जिनका चलने का व्रत है उन्हे वर्षा क्या रोक सकती है? कभी-कभी जव वूदें जोर से आने लगती है तो साधु लोग वृक्षो के नीचे ठहर जाते

हैं। वृक्ष यहा खूब है। वृक्ष नही होते हैं तो प्लास्टिक का कपडा ओढकर आगे वढते रहते है। प्रकृति रोकना चाहती है। हम रुकना नही चाहते। यह सघर्ष है। सघर्ष मे कष्ट तो होते ही है। पर विजय का नशा बहुत बड़ा होता है। उसमे कष्ट गौरा हो जाते है। सामने जब वडा लक्ष्य होता है तो मनुष्य छोटे-छोटे कष्टो की परवाह नही करता। इसीलिए ऋषियो ने कहा है—अपना लक्ष्य वहुत ऊचा रखो। इतना ऊचा कि जीवन-भर उसे पाने की साध मिट नही पाये।

थानेदार रामप्रसाद ने कहा—आचार्यजी ! जब तक आपका परिचय नही होता है तब तक लोग अनेक प्रकार की कल्पनाए करते है। कोई कहता है ये ढोगी हैं, कोई कहता है ये साधु के वेश मे बदमाश है। पर परिचय हो जाता है तो पता चलता है आपकी साधना कितनी उत्कृष्ट है। सचमुच आपके दर्शन दुर्लभ हैं। कहा राजस्थान और कहा बंगाल। हम लोगो का सौभाग्य है कि आपने हमे घर आकर दर्शन दिये।

एक अन्य थानेदार कहने लगे—आचार्यजी ! यहा तो सदा चोर और वदमाश ही आते है और उनके स्वागत के लिए काल कोठरिया सदा सन्नद्ध रहती है। पर आज अपने थाने मे एक सत-पुरुष को पाकर सचमुच हम कृतार्थ हो गये है। हमारा यह कारावास आज एक सत निवास वन गया है।

अध्ययन का भी एक जबरदस्त नशा है। जव यह नशा चढ जाता है तो दूसरे आवश्यक काम भी कुछ गौरा हो जाते है। अध्ययन की धुन मे आज एक साधु साय वदना के पश्चात् वाहर रह गये। थोडा-थोडा अधेरा भी पडने लगा। जव वे अन्दर आये तो आचार्यश्री प्रतिक्रमरा करने लगे थे। पहला ध्यान—कायोत्सर्ग पूरा हो चुका था। यद्यपि वे बहुत चुपके से आये थे पर आचार्यश्री की सजग आखो से वच नही सके। कहने लगे—अभी तक वाहर ही हो ? प्रतिक्रमरा प्रारम्भ नही किया ?

वे तो जमीन मे गड से गये । पर जो प्रमाद उनकी ओर से हो चुका उसे तो स्वीकार करना ही पडा । बस 'तहत्त' के सिवाय और कोई चारा नही था । आकर प्रतिक्रमण करने लगे ।

मैं इस घटना पर वडी देर तक विचार करता रहा। सोचता रहा—कितना वैषम्य है आज के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो मे और इन मुमुक्षु विद्यार्थियो मे । वहा अध्ययन के लिए वहाने वनाये जाते है और यहा अध्ययन के लिए प्रतिस्पर्धा है । सव कोई चाहता है कि मैं किसी से पीछे नही रह जाऊँ । यद्यपि लम्बी यात्राओ से हमारे गम्भीर अध्ययन को कुछ ठेस पहुची है, इसमे कुछ कमी आई है । पर आकाक्षाओ मे आज भी वही वेग है जो अपने साथ सव कुछ वहा ले जाना चाहता है । यह सव स्वस्थ पथ-दर्शन का ही परिणाम है । आचार और विचार दोनो मे संतुलन रखने की आचार्यश्री की क्षमता सचमुच वहुत ही दुर्लभ है ।

रात्री मे आचार्यश्री ने पुलिस के नौजवानो को उपदेश दिया । जिससे प्रभावित होकर-कुछ लोगो ने प्रवेशक अणुव्रती के कुछ नियम लिये ।

●

२-१-६०

प्रात काल ११ मील का विहार था। रात्री मे काफी पानी वरसा था। अव भी वादल आकाश मे दौड रहे थे। पर चलना तो था ही। चल पडे। आगे जहा पहुचे तो केवल एक 'डाक वगला' मिला। 'डाक वगला' भी छोटा-सा, केवल छोटे-छोटे चार कमरो वाला। उसमे एक ओर हम ठहरे थे दूसरी तरफ साध्विया ठहरी थी। यात्री लोग भी वर्षा से वचने के लिए वही आते। और जाते भी कहा ? वहा कोई दूसरा मकान था भी तो नही। वडी भीड रही। एक समस्या और थी। रास्ते मे कुछ साधुओ के कपडे भी भीग गये थे। उन्हे भी सुखाना था। पर यह अनुपलब्धि ऐसी नही थी जो हमे परास्त कर सके। हमारा जीवन ही अनुपलब्धियो का एक स्रोत है। अत इन छोटी-मोटी वाधाओ को हम गिनते ही नही। निरन्तर की वाधाए जीवन को इतना सहिष्णु वना देती है कि 'कुछ' का तो वहा अनुभव ही नही होता। अत सव साधु सिमट कर वैठ गये।

थोडी वहुत जो भी भिक्षा हुई उसे साधु-साध्वियो मे वरावर वाट दिया गया। आहार करने के लिए वैठे तो कुछ सकोच हुआ। आचार्यश्री सामने वैठे थे। अपनी मनोवृत्ति के अनुसार हम लोग आचार्यश्री के सामने आहार करने मे जरा सकोच करते हैं। हालाकि इस यात्रा मे हमारा यह सकोच कुछ-कुछ निकल गया है। क्योकि प्राय स्थान की इतनी सकीर्णता रहती थी कि सकोच का निर्वाह होना कठिन हो जाता। आचार्यश्री भी हमे वार-वार इस सकोच को छोडने को कहते रहते हैं। अतः वह कुछ-कुछ शिथिल पड चुका था। पर फिर भी हम आचार्यश्री

की अनुपस्थिति मे आहार करना अधिक पसन्द करते है। ऐसे अवसरों पर आचार्यश्री स्वय ही कमरे के बाहर घूमने चले जाते है। पर आज तो बाहर भी इतनी जगह नही थी कि आचार्यश्री घूम सके। वहा यात्री लोग ठहरे हुए थ। निरुपाय होकर हमे वही आहार करना पडा। हा आचार्यश्री ने शायद ही हमारी ओर आख उठाकर देखा हो। वे अपने लेखन मे व्यस्त हो गये।

वर्षा अब भी थमने का नाम नही ले रही थी। मौसम खराब तो था ही अत भीग जाने से साध्वी प्रमुखा लाडाजी को थोडा ज्वर हो गया। अपनी आचार-विधि के अनुसार हम लोग—साधु-साध्विया रात्री मे एक स्थान पर नही ठहर सकते थे। पहले सोचा था शायद वर्षा थम जाएगी तो हम आगे चले जाएँगे। साध्वियो को तो यहा रुकना ही पडेगा। पर दोपहर के दो बजे तक वर्षा नही रुकी। अन्त मे वर्षा होते हुए भी दोपहर को हमे पचमी समिति के निमित्त से अगले गाव के लिए प्रस्थान कर देना पडा। आचार्यश्री ने सब साधुओ को सकेत कर दिया बाहर ठड हो सकती है। अत सभी साधु अपना-अपना सरक्षण कर लें। तदनुसार हमने अपना-अपना उचित प्रबन्ध कर लिया। जब तक मनुष्य नही चलता है तब तक सर्दी और हवा लगती है। पर जब चल पडता है तब सब कुछ सहन हो जाता है। शब्द शास्त्र मे आज जैसे दिन के लिए दुर्दिन का प्रयोग आता है। पर हम क्रमश अपने लक्ष्य के निकट पहुच रहे थे। अत हमारे लिए वह सुदिन ही हो गया। मन मे थोडा-थोडा डर अवश्य लगता था। राजस्थान अभी बहुत दूर है, हमे अभी बहुत दूर चलना है, कही बीच मे किसी के गडबड हो गई तो बडी कठिनाई हो जाएगी। पर न जाने कौन-सी अज्ञात शक्ति हमे सकुशल अपने लक्ष्य की ओर धकेल रही थी।

मार्ग तो बडा ही खराब था। यदि सडक न हो तो इस भूमि पर

दो कदम चलना भी कठिन हो जाए। चारो ओर कीचड-ही-कीचड हो गया था। कभी-कभी मोटरो के लिए मार्ग छोडना पडता तो पैर कीचड़ से लथपथ हो जाते। फिर सडक पर चलना भी कठिन हो जाता। सडक पर चलने की कठिनाई और भी थी। कभी-कभी मोटरें जब साईड देने के लिए सडक से नीचे उतरती तो पहियो मे इतना कीचड धँस जाता कि वापिस सडक पर आने से बहुत दूर तक सडक पर मिट्टी-ही-मिट्टी हो जाती। साधारणतया यहाँ की मिट्टी चिकनी होती है। अत उसमे ककड नही होते। पर सडक के आस-पास मे तो ककड भी बिछाने पडते हैं। अत· मिट्टी के साथ मिले हुए वे कक्कड कभी-कभी जब पैरो के नीचे आ जाते तो एक बार तो काटे से चुभने लगते। वैसे भी पक्की और फिर गीली सडक पर नगे पैर पडते तो घिस-घिसकर लहू-लुहान हो जाते। साधारणतया रबड के टुकडे से हम अपने पैरो की सुरक्षा कर लिया करते थे। पर वर्षा मे जब सडक पर पानी पडा रहता तो वे भी गीले हो जाते और उन्हे बाँधे रहते चलना कठिन हो जाता। मुलायम रबड भी पानी से गीला होकर चमडी को कितनी सूक्ष्मता से घिसता है इसका अनुभव हमे वर्षा के दिनो मे प्राय हो जाया करता था।

सडक पर स्थान-स्थान पर पानी पडा था। अत. जब कभी मोटरें उसमे से होकर निकलती तो वे दूर-दूर तक छीटे उछाल देती। हमे दूर से ही सावधान हो जाना पडता था। ड्राइवरो को इतनी चिन्ता कहा होती है जो वे दूसरो का ख्याल रखें। वे तो अन्धाधुध मोटरे चलाते है। हमने सुना था कि ड्राइवर लोग प्राय शराब पीकर मोटरें चलाते है। इसीलिए रास्ते मे हमने अनेक दुर्घटनाए भी देखी। कही स्वय मोटरें ही गड्ढो मे गिर गई थी तो कही वृक्षो, पुलो तथा दूसरी मोटरो से टक्कर खाकर वे चकनाचूर हो गई थी। अभी-अभी हमारे आने से थोड़ी देर पहले एक मोटर ने एक बैलगाडी को इतने जोर से धक्का

दिया कि वेचारा हृष्ट-पुष्ट वैल आहत होकर मर गया। हमने अपनी आखो से उसे अन्तिम श्वासें लेते देखा था। गाडी मे कोयले भरे थे। सारे कोयले सडक पर दूर-दूर तक विखर गये थे। गाडी का तो टुकड़ा-टुकडा हो गया। एक्सीडेंट करके मोटर वाला तो दौड गया था। पर वेचारे वैल वाले गरीव के गले मे आफत आ गई। पुलिस घटना-स्थल मे पहुच गई जो शायद अपनी पूजा की प्रतीक्षा कर रही थी।

शाम को आज भी थाने मे ही ठहरे थे। थोडी-सी जगह मे जैसे-तैसे करके काम चला लिया। वर्षा अव भी चालू थी। अत कुछ साधु एक दूसरी कोठरी मे ठहरे हुए थे। चूकि वूदो मे हम भिक्षा लेने नही जाते। अतः पास ठहरे यात्रियो से जो कुछ भिक्षा मिली उसे वाटकर खा लिया। पर रात्रि शयन की समस्या थी। इसकी हमसे अधिक चिंता थी सुगनचन्दजी आचलिया, डालचन्द वरड़िया तथा खेमराजजी सेठिया को। वे अव भी इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे। अचानक उन्हे पास मे ही एक वीज गोदाम मिल गया। उसके अधिकारी से वातचीत करके उन्होने उसे हमारे लिए खाली करवा दिया। सौभाग्य से साय गुरु वन्दन के समय वूदें भी थोडी देर के लिए रुक गईं। हम कुछ साधु अपने-अपने उपकरण लेकर गोदाम मे आ गये। रात वहा शाति से कटी। थके हुओ को नीद भी वडी सुखद आती है।

❂

३-१-६०

जैसा कि कल रात को अदेशा था सुबह धुन्ध (धवर) न आ जाए वह आ ही गई। पिछली रात मे उठे तो देखा चारो ओर अधेरा-ही-अधेरा है। एक प्रकार की मीठी सुगन्ध भी धुन्ध के आ जाने की सूचना कर रही थी। वर्षा के बाद प्राय धुध आती है यह एक सामान्य धारणा है। वही आज सत्य प्रमाणित हो रही थी। सूर्य निकल गया पर हम आगे के लिए प्रस्थान नही कर सके। क्योकि धुध मे हमारा चलना निषिद्ध है। अत वही बैठे रहे। उपकरण सब समेट लिये थे। सब सैनिको की भाति सन्नद्ध बैठे थे। आचार्यश्री सकेत करे और हम सब एक मिनट मे चल पड़ें, ऐसी हमारी तैयारी थी। पर धुध के जल्दी से बिखरने के कोई चिह्न नही दीख रहे थे। अत अपनी-अपनी नोट-बुके निकाल कर सब पढने लगे। विचार आया छोटी-छोटी जल की बूंदें भी महातेजा सूर्य को आच्छादित कर एक बार उसे कितना निस्तेज बना सकती है। पर आखिर सूर्य सूर्य है। धुध के बादल-जाल को हटना पडा। आकाश कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा। धुध के बादल बधकर इकट्ठे हो रहे थे। करीब साढे नौ बजे तक धुध ने हमे वहा रोके रखा। फिर जब तैयार होने का शब्द-सकेत हुआ तो हमने अपना-अपना सामान अपने कधो पर लाद लिया और आगे के लिए चल पडे।

रात मे आचार्यश्री के पास एक किसान आया था। उसके गन्ने बिलकुल पास मे ही पेले जा रहे थे। अत प्रात काल उसने हमसे निवेदन किया कि हम चाहे तो उसके यहा से गन्ने का रस ले सकते है।

हमारी इच्छा भी हो गई। पर आचार्यश्री से आज्ञा लेने गये तो निषेध कर दिया। कहने लगे—अभी आगे चलना है। रस लेने से देरी हो जाएगी। रस मीठा है या मजिल ! मानना पडा कि मजिल ही मीठी है। अत. बिना रस पीये ही आगे चल पडे।

चूकि देर काफी हो चुकी थी। कुछ साधु धीरे-धीरे चल रहे थे। अत आचार्यश्री वही ठहर गये। कहने लगे—जल्दी करो। सब आगे निकल जाओ। मैं सबसे पीछे रहूँगा। ताकि सभी समय पर पहुच जाए। हम लोग तथा साध्वियाँ भी आगे निकल गई। सबसे पीछे आचार्यश्री थे। हमे अपनी गति मे वेग लाना आवश्यक हो गया। अगर पीछे रह जाते तो आचार्यश्री हँसे बिना नही रहते। अत सब जल्दी-जल्दी चलने लगे। आचार्यश्री को भी जब हम सब आगे निकल जाते है तो बडी निश्चिन्तता रहती है। कुछ साधु तो प्रतिस्पर्धा मे आकर इतने तेज चलने लगे कि दस-ग्यारह मिनट मे ही एक मील पार हो गये। हमारी गति की भी अपनी एक व्यवस्था है। हम दौड तो सकते नही। बीच-बीच मे पानी को बचाना पडता था, हरियाली को बचाना पडता था और सबसे ज्यादा तो बचाना पडता था अबाध गति से चलने वाले यातायात को। अत इन सब बाधाओ के होते हुए भी करीब एक घण्टे मे अगली मजिल पहुच गये और आचार्यश्री के पहुचने तक अपना-अपना अध्ययन करते रहे।

आचार्यश्री ने आते ही भिक्षा के लिए जाने का आदेश दे दिया। सब साधु भिक्षा के लिये जाने लगे। आचार्यश्री आज बाहर बरामदे मे ही बैठे थे। अत. हम सबको आते-जाते देख रहे थे। मैं पानी लेकर आया तो कहने लगे—तुम लोग बिना पछेवडी (उत्तरीय) के गाठ दिये कैसे चलते हो ? यो ढीले-ढाले बदन से तुमसे कैसे चला जाता है ? मैंने कहा—मेरी पछेवडी मोटे कपडे की है तथा कुछ मोटी भी है

फिर मैंने अन्दर एक कपडा और भी ओढ रखा है अत गाठ लगा देनी कठिन थी ।

आचार्यश्री—पर मुझसे तो ऐसे चला नही जा सकता । फिर विना गाठ दिये हमे भिक्षा के लिए जाना भी तो नही है ।

मैंने अपनी त्रुटि स्वीकार कर ली और चुपचाप चला आया । पर आचार्यश्री तो आज मानो त्रुटिया निकालने के लिए ही बैठे थे । दो-चार साधुओ को और भी पकडा । कुछ साधुओ की झोली गीली हो गई । कुछ के पात्र मे से पानी छलक गया, सबको एक-एक करके अपने पास बुलाया और उन्हे उनकी गलती समझाई । सचमुच आचार्यश्री बड़ी सूक्ष्मता से मनुष्य प्रकृति का अध्ययन करते है ।

शाम को हम खागा ठहरे । खागा अणुव्रत-समिति के कार्यकर्ता सिद्धनाथ मिश्र का गाव है । अत आज की सारी व्यवस्था उसने ही की थी । शाम को आचार्यश्री स्वय उसके घर भिक्षा के लिए पधारे ।

❁

४-१-६०

सूर्योदय हमारे लिए विहार का सन्देश लेकर प्राची मे प्रभासित हुआ हमने चरण जी० टी० रोड की ओर वढा दिये। कुछ दूर खागा की गदी और तग गलियो को पार कर ज्योही जी० टी० रोड पर आये मजिल जैसे सामने-सी दीखने लगी। जी० टी० रोड व्यस्त तो रहती ही है। अत. ज्योही हम उस पर चलने लगे कि वसो के आने जाने का ताता वँध गया। खागा सडक के दाए किनारे पर बसा हुआ था अत हमे भी स्वभावतः ही दाए होकर चलना पड रहा था। पर हमारे यात्री दल को यह नियमोल्लघन कब सहन हो सकता था। तत्क्षण आवाजें आने लगी—साईड ! साईड !! अत बसो के निकल जाने पर हमने झट से अपनी साईड बदल ली और वाए होकर चलने लगे।

कई दिनो से आज मौसम कुछ खुला हुआ था। कल वर्षा खुलकर हो चुकी थी। अतः बादलो के मन की निकल चुकी थी सद्य स्नात पुरुषो की भाति मौसम भी कुछ कम सर्दी अनुभव कर रहा था। अत पोष महीने जैसी ठड पड रही थी। चलने से स्वभावत ही शरीर गर्म हो जाता है। अत एक भाई (सीताराम) जिसने बहुत सारे कपडे पहन, ओढ रखे थे पसीने से तर होकर कहने लगा—आज तो वडी गर्मी पड रही है। दूसरे भाई दौलतरामजी ने प्रतिवाद किया—नही जेष्ठ महीने जैसी गर्मी तो नही पड रही है। दोनो वस्तुस्थिति के दो विरोधी किनारो पर चल रहे थे। अत आचार्य श्री ने बीच मे ही अपने चरण रोक लिए और कहने लगे—दोनो ही अतिया अच्छी नही है। न जेठ महीने जैसी गर्मी है और

न पोष महीने जैसी सर्दी भी। अत' यह कहना उपयुक्त रहेगा कि आज तो चैत्र मास जैसा सुहावना मौसम हो गया है। दोनो ने इस मध्यरेखा को स्वीकार कर लिया और हँसने लगे। यद्यपि यह एक मृदु-विवाद ही था पर बहुधा इस प्रकार की छोटी-छोटी घटनाओ को लेकर परस्पर काफी विवाद हो जाता है। उस स्थिति मे यदि मध्यम-मार्ग अपना लिया जाय तो विवाद से काफी बचाव हो सकता है। यही सकेत बडी देर तक चेतना को झकझोरता रहा।

शाम को गुरु वन्दन के समय जब आचार्यश्री कमरे से बाहर बरामदे में आये तो देखा जिस ओर हम आचार्यश्री के बैठने की चौकी लगा रहे थे उस ओर साधुओ ने अपने कपडे सुखाने के लिए एक डोरी बाध रखी है। उस पर कुछ कपडे भी सुखाये हुए थे। मैं जल्दी-जल्दी कपडो को हटाकर रस्सी खोल ही रहा था कि आचार्यश्री कहने लगे—इसे क्यों खोलते हो ? मै—यहा चौकी रखनी है। अत इसे खोल रहा हू। आचार्यश्री—तब फिर इसके बाधने का क्या अर्थ होगा ?

मैं—अभी एक मिनट मे इसे उधर बाध दू गा। आचार्यश्री—इधर से खोलोगे, उधर बाधोगे इससे क्या लाभ ? हमारे उधर बैठने मे कुछ हानि तो नही है ? तब हम ही उधर बैठ जाएगे। इसे पडी रहने दो। मैं तो आदेश-विवश और भक्ति-भावित हो असमजस मे पड गया। करना तो आखिर वही पडा जो आचार्यश्री ने आदेश दिया।

प्रतिक्रमण के पश्चात् हमारी अध्ययन की गतिविधि के बारे मे पूछते हुए आचार्यश्री कहने लगे—षड्दर्शन चल रहा है ? हमने सभी ने हामी भरी तो पूछने लगे—वेदान्त को षड्दर्शनो मे—(१) बौद्ध (२) न्याय-वैशेषिक (३) साख्य (४) जैन (५) जैमनीय (६) चार्वाक मे से किस दर्शन मे गिनोगे ? किसी ने कहा नैयायिक-दर्शन मे तो किसी ने कहा—जैमनीय दर्शन मे। पर आचार्यश्री अपना सिर हिला-हिलाकर

सबको अस्वीकृत कर रहे थे। इतने मे एक स्वर आया—वेदान्त तो स्वतन्त्र-दर्शन है। उसकी कुछ मान्यताएँ नैयायिक दर्शन से मिलती है तथा कुछ जैमनीय दर्शन से आचार्यश्री ने इस उत्तर की स्वीकृति देते हुए कहा—हा यह ठीक है। वेदान्त की षड्-दर्शन मे गणना नही होने का कारण तो यही हो सकता है कि इसका अधिक विकास शकराचार्य के बाद ही हुआ है। शकराचार्य का समय विक्रम की दसवी शताब्दी का है तथा षड्-दर्शन के रचयिता हरिभद्र सूरि का समय आठवी शताब्दी का है। अत' स्वभावत. ही उसका षड्-दर्शन ग्रथ मे विवरण नही आ सकता था। वैसे वेदान्त का ब्रह्म सूत्र बहुत पहले ही बन चुका था तथा षड्-दर्शन की टीका मे प्रभाकर-पूर्व मीमासक के नाम से उसका कुछ खण्डन-मण्डन भी हुआ है। पर आज वेदान्त का जितना विकसित स्वरूप देखने मे आता है उतना शायद उस समय मे नही था। इसीलिए मुनिश्री नथमलजी की ओर सकेत कर आचार्यश्री ने कहा—अब आवश्यकता है एक ऐसे दर्शन-परिचय ग्रन्थ की जिसमे हरिभद्र के बाद की सभी दर्शन-प्रणालियो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला जा सके। दर्शन के विद्यार्थियो के लिए यह बहुत काम की चीज बन जायगी। उसमे पूर्वीय तथा पाश्चात्य सभी दर्शनो का परिचय आ जाना चाहिए। कार्लमार्क्स के दर्शन को भी उसमे सग्रहित करना चाहिए। यद्यपि हम लोग आस्तिक है पर हमे नास्तिको का भी अनादर नही करना चाहिए। उनके दर्शन का भी हमे गहराई से अध्ययन करना चाहिए। आचार्य हरिभद्र ने भी तो षड्-दर्शनो मे नास्तिको को वैकल्पिक रूप मे स्थान दिया है। अत हमारे लिए भूतवाद का अध्ययन भी आवश्यक है। यद्यपि भिक्षु-न्याय-कर्णिका मे सक्षेप मे इस विषय पर भी विचार किया गया है। पर वह अति सक्षिप्त है। उसका थोडा-बडा रूप विद्यार्थियो के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

तत्पश्चात् प्रार्थना हुई। बडा शात वातावरण था प्रार्थना के लिए

जितनी शाति अपेक्षित होती है वह उस समय थी। ग्रामीण लोग भी काफी आये थे। हाथो मे जिनके अधिकतर लाठिया थी। यहाँ उत्तर-प्रदेश मे लोग लडाकू बहुत होते हैं। अत बच्चे भी वचपन से ही हाथ मे लाठी रखना सीख जाते है। इसका ही तो यह प्रतिफल है कि उत्तर-प्रदेश की जेले अपराधियो से भरी रहती है। छोटी-छोटी वातो पर भी लोग लड पडते है। हत्या के 'केस' भी यहाँ आए दिन होते रहते हैं। लाठी तो अपने आप मे निर्जीव है। उसे सुरक्षा के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है तथा आक्रमण के लिए भी। आक्रमण होता है तव सुरक्षा की आवश्यकता होती है। पर लाठी हाथ मे रहती है तो आक्रमण को बहुत जल्दी उभरने का अवसर मिल जाता है।

प्रार्थना के पश्चात् प्रवचन हुआ। अन्त मे वहुत सारे ग्रामीणो ने मद्यपान का त्याग किया।

◎

५-१-६०

आज हम एक शिव मन्दिर मे ठहरे थे। हमारे लिए मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे और उपाश्रय का कोई भेद नही है। जहा भी जगह मिल जाती है वही ठहर जाते हैं। हा जहा जाते है वहा की सभ्यता का पूरा ख्याल रखते हैं। आज भी आचार्य श्री शिव-मूर्ति को बचाकर बैठे थे। हम भी इस प्रकार बैठे थे जिससे प्रतिमा को पीठ नही लगे।

यहा पहुचते ही आचार्य श्री ने पातञ्जल योग-दर्शन को कण्ठस्थ करना प्रारभ कर दिया। बहुत सारे लोग समझते हैं, अवस्था पक जाने के बाद कण्ठस्थ नही हो सकता। पर आचार्य श्री को यह मान्य नही है और न ही उन्हे यह सकोच है कि एक आचार्य होकर भी वे साधारण बाल-विद्यार्थियो की तरह कैसे पढ सकते है? आचार्य श्री बहुधा कहा करते है—मैं तो एक विद्यार्थी हू। आज वह रूप स्पष्ट दीख रहा था। ज्ञानार्जन के बारे मे आचार्य श्री का निश्चित मत है कि बिना ज्ञान को कण्ठस्थ किए कोई भी व्यक्ति पारगामी विद्वान् नही बन सकता। आज कल की शिक्षा-शैली मे ज्ञान का बोझ बढाना—कण्ठस्थ करना आवश्यक नही समझा जाता। पर हमारे शासन मे आज भी 'ज्ञान-कठा और दाम अटा' के अनुसार कण्ठस्थ करने की पद्धति पर बहुत ही बल दिया जाता है। इसी का परिणाम है कि आचार्य श्री ने अपने शिक्षण काल मे २१ हजार पद्य प्रमाण ज्ञान-कोष कण्ठस्थ कर लिया था। जिसे आज भी वे दुहराते रहते है। हम लोगो पर भी इसका प्रतिबिम्ब तो पडता ही है। इसीलिए तेरापथ-सघ मे प्रत्येक सदस्य के अपनी योग्यतानुरूप कण्ठस्थ अवश्य मिलेगा।

आचार्य श्री स्वय पातञ्जल योग-दर्शन कण्ठस्थ कर रहे थे। एक बातचीत के प्रसग मे उन्होने हमे कहा—यद्यपि हम जैन है, पर हमे दूसरे दर्शनो का भी गहरा अध्ययन करना चाहिए। उसके बिना हमारा ज्ञान-घट अधूरा रह जाता है। यद्यपि दूसरे दार्शनिक जैन-दर्शन को बहुत कम पढते हैं। पर हमें यह सकीर्णता नही रखनी चाहिए। कुछ लोग समझते है दूसरे दार्शनिक-ग्रन्थों को पढने से अपने सिद्धान्तो मे अश्रद्धा हो जाता है, पर मैं यह नही समझता। हा यह तो सही है कि पहले व्यक्ति को अपने पास वाले दर्शन की खूब गहराई से छान-बीन कर लेनी चाहिए। अन्यथा वह दूसरे दर्शन-ग्रन्थो को भी नही समझ पाएगा। पर बिना अध्ययन क्षेत्र को व्यापक बनाए कोई व्यक्ति अपने दर्शन का भी पूर्ण अध्येता बन सकता है यह नही कहा जा सकता। मैं तो यह भी चाहता हूँ कि हम दूसरे दार्शनिको को उनके अपने सूत्र-ग्रन्थो से पढें। आजकल प्राय लोग दूसरो द्वारा लिखी हुई आलोचनाओ, व्याख्याओ से दर्शन-स्रोतो की गहराई मापना चाहते हैं, पर इससे अध्ययन मे प्रामाणिकता नही आ सकती। इसीलिए बडे-बडे लेखक भी बहुधा इतनी भूले कर बैठते है जो सर्वथा अक्षम्य ही होती है। हमे ऐसा नही करना है। हम किसी दर्शन के प्रति अन्याय करना नही चाहते। इसीलिए तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

हम ये बातें कर ही रहे थे कि इतने मे एक वकील—हनुमानप्रसाद जी कायस्थ अपनी पत्नी तथा एक दूसरी महिला, जो शायद उनकी पुत्र-वधू या पुत्री थी, के साथ आचार्य श्री के पास आए। आते ही उन्होने अपनी जेब से दो कोमल कलिया निकाल कर आचार्य श्री के चरणो में रख दी आचार्य श्री थोड़े से सकुचाए और बोले—हम लोग किसी भी वनस्पति का स्पर्श नही करते।

वकील—(एकदम अवाक् रहकर) क्यो ?

आचार्य श्री—क्योकि इनमे भी जीवन होता है ।

वकील—तो क्या आप भोजन नही करते ?

आचार्य श्री—भोजन तो करते ही हैं, नही तो जीवन कैसे चलता ?

वकील—तो क्या उसमे वनस्पति के जीव नही मरते ?

आचार्य श्री—हा इसीलिए तो हम कच्ची सब्जी नही लेते । हम ऐसा ही भोजन ले सकते हैं जो उबालकर निर्जीव कर लिया जाता है ।

वकील—इसमें क्या अन्तर पड़ा ? जीवित वनस्पति नही खाते हैं तो मार कर खा लेते हैं ।

आचार्य श्री—नही हम लोग अपने हाथ से किसी जीव को नही मारते ।

वकील—तो दूसरो से मरवा लेते होगे ?

आचार्य श्री—नही कोई भी हमारे लिए भोजन नही बनाता । सभी लोग अपने-अपने लिए जो भोजन बनाते है उसी मे से यदि कोई हमे देना चाहे तो थोडा-बहुत जैसी इच्छा हो ले सकते हैं ।

वकील—आप कितने आदमी है ?

आचार्य श्री— हम साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविकाएं कुल मिलाकर २०० आदमी हैं ।

वकील—साधु-साध्वी कितने है ?

आचार्य श्री—सड़सठ ।

वकील—तो क्या आज आप हमारे घर पर दावत ले सकते हैं ?

आचार्य श्री—पर आप हमे दावत कैसे देंगे ?

वकील—आप सभी के लिए अभी अपने घर रसोई करवा दूंगा । हमारे घर तो बहुधा संत-मण्डली आती ही रहती हैं । हम उस लम्बी पक्ति को अनेक बार दावत देते ही रहते हैं । मेरा पुत्र जो एम० ए० पास था, अच्छी नौकरी भी थी पर उसने सब कुछ त्यागकर साधु-जीवन अपना लिया । वह भी कई बार हमारे घर आता है ।

आचार्य श्री—वे सत दूसरे प्रकार के हैं। हम लोग अपने लिए बनाया हुआ भोजन नही लेते। इसलिए मैं कह रहा हू कि आप हमें भोजन कैसे देंगे ? हाँ यह हो सकता है कि आप अपने खाने के लिए जो कुछ तैयार करें उसमे से थोडा कुछ हमे दे दे।

वकील—अच्छा तो वही कीजिए। हम अपने घर मे वहुत सारे लोग हैं। आज हम नही खाएगे आपको ही खिलाएगे। अधिक नही तो आप पाच-सात साधु ही हमारे घर भोजन कर लीजिए।

आचार्य श्री—हम गृहस्थ के घर पर भोजन नही कर सकते। जो कुछ मिलता है उसे अपने पात्र मे ले लेते हैं और अपने स्थान पर आकर ही खाते है।

वकील—अच्छा तो वह भी कीजिए।

आचार्य श्री—आपका घर यहा से कितनी दूर है ?

वकील—करीव एक मील तो होगा ही।

आचार्य श्री—तव तो मैं नही जा सकूंगा किसी दूसरे साधु को भेज सकता हूँ।

वकील—अच्छा तो वह भी कीजिए।

आचार्य श्री—पर आपके भोजन पकाने का प्रतिदिन का समय कौन-सा है ?

वकील—प्रायः इसी समय हम लोग भोजन पकाते हैं कुछ देरी भी हो सकती।

आचार्य श्री—हा तो हमारे लिए आप जल्दी मत करना प्रतिदिन जिस समय भोजन बनता है उसी समय हम आपके घर साधुओ को भेज देंगे। एक वात का ध्यान रखना आवश्यक है हमारे लिए कुछ भी विशेष नही बनाया जाए। आप जो कुछ खाते है उसमे से ही हम जरा कुछ ले लेंगे। कुछ भोजन वन गया होगा तो वह ले लेंगे और नही हुआ होगा तो ठडी, बासी, छाछ, मट्ठा जो कुछ भी होगा वही ले लेंगे।

वकील—वाह ! ऐसा भी कभी हो सकता है। हमारा गृहस्थो का भी तो अपना धर्म होता है। कोई अतिथि हमारे घर आए और हम उसकी अच्छी तरह से सेवा नही करें तो हम अपने धर्म से स्खलित नहीं हो जाएगे ?

आचार्य श्री—पर हमारे लिए भोजन बनाकर देने से हम अपने धर्म से स्खलित नही हो जाएँगे ?

वकील—हमारे घर मे जो अच्छी-से-अच्छी चीज होगी वही हम आपको देंगे।

आचार्यश्री—यह तो ठीक है कि आपका धर्म सेवा करना है पर वैसी सेवा करना तो नही कि जिससे हमारा नेम-धर्म टूटता हो। इसीलिए हमारे लिए कोई चीज करवाने की आवश्यकता नही है।

वकील—अच्छा ! तो आज हम भी हलुआ खाएगे और आपको भी वही देंगे।

आचार्य श्री—ऐसा नही। हम आए हैं इसलिए आप हलुआ बनाए वह भी हमे स्वीकृत नही है।

वकील—नही, नही। आज मंगलवार है। इसलिए हम लोग नमक नही खाते। हम हलुआ बनाएगे और आपको हलुआ ही देंगे। अच्छा तो आपका सामान कहा है ?

आचार्य श्री—हमारा सामान बस इतना ही है जितना आप हमारे पास देख रहे हैं।

वकील—सर्दी मे इतने से कपडो से आपका काम चल जाता है !

आचार्य श्री—आप देख लीजिए चल ही रहा है न ! हम लोग न तो इससे अधिक सामान रखते है और न पैसा भी रखते है। यहा तक कि अपने पास कण भर भी धातु नही रखते। क्या आप हमे कुछ भेंट देंगे ?

वकील—हा, आप कहेगे वही भेंट दे सकते है।

आचार्य श्री—रुपयों, पैसो की भेंट तो हम लेते नही। इसलिए हम वही भेंट लेंगे जो आपकी प्यारी-से-प्यारी है अर्थात् तम्वाकू।

वकील—यह तो वहुत वडी वात है पर आपके वचन का लोप भी कैसे कर सकता हू। कुछ तो तम्वाकू छोडूंगा ही।

मैंने उनसे पूछा—क्या आपने अणुव्रत का नाम सुना है? तो कहने लगे—अरे! आज अणुवम को कौन नही जानता। हम तो उसका विरोध करते हैं।

मैं—नही मैं अणुवम की वात नही कहता अणुव्रत की कहता हू।

वकील—अणुव्रत क्या है? मैं तो नही जानता।

आचार्य श्री ने उन्हे अणुव्रत का परिचय दिया तो कहने लगे—तो क्या आप इसकी एक शाखा हमारे यहा खोल सकते हैं?

आचार्य श्री—पहले आप इसके साहित्य का अध्ययन कीजिए। फिर इस विषय पर वात करेंगे। इस प्रकार लम्वी देर तक चर्चा होती रही और अन्त मे जव उनके भोजन पकाने का समय हो गया तो आचार्य श्री ने मुनिश्री नेमीचन्दजी को उनके घर भिक्षा के लिए भेजा।

६-१-६०

अभी तक आचार्यश्री का स्वास्थ्य पूर्ण रूप से स्वस्थ नही हुआ है। फिर भी विहार तो लम्बे-लम्बे ही करने पडते है। इससे कुछ-कुछ थकावट भी आ जाती है। आहार-व्यवस्था मे आचार्य श्री ने बहुत कुछ परिवर्तन कर लिया है। परिणाम स्वरूप दो-चार द्रव्य ही दिन भर मे खाते हैं। आज सायकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् कहने लगे—बीमारी के भी तीन गुण हैं। पहला कभी-कभी बीमार हो जाने से मनुष्य का अह दवता रहता है। उसे यह समझने का अवसर मिलता रहता है कि मैं ही सब कुछ नही हू। कुछ अज्ञात शक्तियां भी है जो मनुष्य को परास्त कर सकती हैं। अत मुझे सभल-सभल कर चलना चाहिए। दूसरा—बीमारी के समय बहुत थोडे द्रव्यो के खाने से ही काम चल जाता है। तीसरा—हमेशा ही हमेशा खाते रहने से मनुष्य के कल पुर्जे कुछ शिथित पड जाते हैं। बीमारी मे अल्प भोजन करने से उन्हे विश्रान्ति मिल जाती है और वे एक बार फिर कार्यक्षमता प्राप्त कर लेते हैं।

इतने मे एक वृद्ध किसान कधे पर एक गठरी रखे वहाँ आ पहुचा। अपने जीवन मे वह सभवत ७०-७५ वसन्त देख चुका था। अतः उसकी आखो की रोशनी काफी क्षीण पड चुकी थी। कमर भी झुक चली थी। हाथ मे एक लाठी थी। उसे टिकाते-टिकाते वह धीरे-धीरे चल रहा था। आते ही उसने बडे भक्ति-भाव से नमस्कार किया और नीचे बैठ गया। बैठकर गठरी खोलने लगा। हम सब बडे कुतूहल से उसकी ओर देख रहे थे। हाथ कमजोर हो चले थे। अतः गठरी खोलने मे काफी समय लग

गया । गठरी का एक छोर खोल कर उसने कुछ केले निकाले और उन्हें आचार्य श्री के चरणो मे चढाने लगा । इतने मे भाई लोग एक साथ बोल पडे—अरे ! नही, नही इन्हे आचार्य श्री से मत छुआओ । और एक साथ दौडकर एकदम उसके हाथ पकडने लगे । वह तो बेचारा हक्का-बक्का रह गया । आचार्य श्री ने उन्हे उपालम्भ देते हुए कहा—मैं बैठा हूं तुम लोग क्यो चिन्ता करते हो ? किसी को कुछ कहना हो तो शाति से कहना चाहिए कि यो झूम जाना चाहिए ? भाई लोग यह सुनकर दूर हो गए । आचार्य श्री ने उसे समझाया—बाबा ! हम लोग सब्जी को छूते नही हैं अत दूर से ही बता दो क्या लाए हो ?

बूढा—कुछ नही थोडे-से केले है महात्माजी ! सुना था कि गाँव में महात्मा लोग आये है तो विचार किया, चलो दर्शन कर आऊ । महात्मा लोगो के दर्शन खाली हाथ नही करना चाहिए । अत साथ मे थोड़े केले और थोडे टमाटर ले आया । अपने खेत मे खूब टमाटर होते हैं महात्मा जी ! उनमे से ही अभी तोडकर लाया हू ।

आचार्यश्री—सो तो ठीक । पर हम लोग तो सब्जी को छूते ही नहीं ।

बूढा—सब्जी तो ऋषि-मुनियो का भोजन है इसे क्यो नही छूते ?

आचार्य श्री—इसमे जीव होते हैं ।

बूढा—तो क्या लेते है ?

आचार्य श्री—हम रोटी, उबाली हुई सब्जी, चावल भी ले सकते है ।

बूढा—तो हमारे घर चलिए वहा आपको सब कुछ मिल जाएगा ।

आचार्य श्री—पर अभी तो रात का समय है । अभी हम भिक्षा नही करते ।

बूढा—तो कब करते हैं ?

आचार्य श्री—सुबह सूर्य निकलने के बाद ।

बूढा—तो उस समय हमारे घर आना । रोटी तो नही पर दूध अवश्य मिल सकता है ।

आचार्य श्री—तुम्हारा नाम क्या है ?

बूढा—मेरा नाम वच्चुसिह है।

आचार्य श्री—तुम्हारे पुत्र कितने है ?

बूढा—(पूरा तो मुझे याद नही रहा पर उसने सभवत तीन या चार वतलाए थे) आपकी कृपा से सव कुछ ठीक है महात्माजी ! सौ वीघे जमीन है। कुछ जमीन सरकार लेना चाहती है। पर जिस जमीन को हमने पसीना वहाकर प्राप्त किया है उसे सहज ही कैसे दिया जा सकता है ? घर पर साधु-महात्मा आते ही रहते है। पुत्रो को यह अच्छा नही लगता। पर हमारे अव दिन ही कितने शेप रहे हैं ? जीवन भर भाग-दौडकर इतना सव जोडा है, अव कुछ दान-पुण्य न करें तो क्या करें ? जवानी मे हमने क्या नही किया था ? सव कुछ हमने अपना पसीना वहाकर ही तो जोडा है। पर आजकल का जमाना ही ऐसा है। पुत्र-लोग सव कुछ वटोरना चाहते हैं। कल ही बुढिया को पीट डाला। पर अव क्या करें ? देखते हैं किसी प्रकार भगवान् इस नैया को पार लगा दे तो अच्छा रहे।

उसने और भी वहुत कुछ कहा। आचार्यश्री ने भी वहुत कुछ कहा। दोनो के स्रोत खुल गये। खूव वातें हुई। सचमुच वास्तविक भारत तो गावो मे है। कितना सरल था वह वेचारा ग्रामीण। कितनी श्रद्धा थी, उसके हृदय मे। कितना पवित्र था उसका मन। कितनी सादगी थी उसके वेष मे। कितनी शान्ति थी उसके चेहरे पर। यह सव कुछ देखकर गांव से लौटने का मन ही नही होता।

आचार्य श्री कहने लगे—वास्तविक कार्य-क्षेत्र तो ये गाव है। जी वहुत चाहता है कि यहा वैठकर कुछ काम किया जाय। पर होनहार कुछ और ही है। वहुत चाहते है पर फिर भी अभी तक जन-सकुलता से दूर नीरव-एकान्त मे चातुर्मास विताने का अवसर नही मिला।

आचार्य श्री—हम तो कल सूर्योदय होते ही यहा से चल पडेंगे।

बूढा—मैं भी आपके साथ हो जाऊंगा। एक दो दिन जितना हो सके सत्संगति का लाभ तो लेना ही चाहिए। छोटे लडके से कह दूंगा वह रोटी ले आया करेगा और मैं आपके साथ-साथ पैदल चला करूंगा। भगवान् ऐसा मौका बार-बार थोडे ही देता है ?

आचार्य श्री—अच्छा बाबा तुम्हारी यह भेंट तो हम नही लेंगे पर कुछ दूसरी भेंट तो जरूर लेंगे।

बूढा—क्या लेंगे ?

आचार्य श्री—शराब पीते हो ?

बूढा—नही, तम्बाकू भी नही पीता।

आचार्यश्री—तो फिर कोई अपनी एक ऐसी प्रिय चीज छोड दो, जो तुम्हे सत-दर्शन की स्मृति कराती रहे।

उसने आजीवन टमाटर खाने का त्याग कर दिया। सचमुच ऐसे प्रसंग बहुत ही कम मिलते हैं। मैं तो भाव-मुग्ध होकर बडी तन्मयता से सुन रहा था।

७-१-६०

पाद विहार और स्वास्थ्य

भले ही वायुयान से यात्रा करने वाले लोग अपने गन्तव्य स्थल पर बहुत जल्दी पहुँच जाते है पर पद-यात्रा का जो लाभ है उसे तो वे नही ही पा सकते। इसीलिए आज आचार्य श्री कहने लगे—पैदल चलने का अपना आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, पर शारीरिक दृष्टि से भी वह हानिकारक नही है। थोडा-थोडा चलते रहने से मनुष्य जल्दी से रोगाक्रान्त नही हो पाता। यद्यपि पुरानी धारणाओ मे "पैंडो भलो न कोस को" पन्थ समो नत्थि जरा" आदि कहकर नित्य पाद सचार को अकाम्य माना गया है। पर अनुभव यह कहता है कि थोडा-थोडा चलते रहना शारीरिक दृष्टि से भी बहुत लाभदायक है। उससे शक्तिक्षय नही होती अपितु शक्ति-सचय होता है। इसीलिए तो कलकत्ते से साथ रहने वाले कुछ भाई-बहिन अपने आपको पहले से कुछ स्वस्थ अनुभव करते हैं। हमे तो अभी जल्दी जाना है इसलिए वायु वेग से चल रहे हैं। पर दस-बारह मील रोज चलना कोई कठिन बात नही है। उससे अनेक लाभ है। भूख खूब खुलकर लगती है, नीद बडी सुखद आती है, चित्त बडा प्रसन्न रहता है, हवा स्वच्छ मिल जाती है जिससे फेफडे ठीक रहते हैं। शहरी लोगो ने पैदल चलने का अभ्यास छोड दिया है इसीलिए उनके लिए मील भर चलना भी कठिन हो जाता है। अगर चल भी लेते हैं तो थकान या बुखार साथ लेकर ही आते है। इसीलिए तो नेहरूजी ने मुनि श्री बुद्धमल्लजी से कहा था—"आप तो

पैदल चलते है पर इन सेठ लोगो को भी पैदल चलाइए।"

अभी आचार्य श्री के साथ काफी भाई-बहिन हैं। कुछ लोगो का तो यह प्रण है कि कुछ भी हो जाय हम तो पैदल ही चलेंगे। मित्र-परिषद् के सदस्यो की सेवा बडी सराहनीय है। वे लोग पैदल भी चलते हैं और यथासमय वाहनो का भी उपयोग करते है। पारमार्थिक-शिक्षण-संस्था की बहिनें तो पैदल ही चलती रही है। महिला मण्डल की कुछ बहिनें भी पैदल ही चलती है। इसके सिवाय और बहुत सारे व्यक्ति भी पैदल चलते है। पुरुषो मे दौलतरामजी छाजेड, जसकरणजी लुणिया, ठाकुर चिमनसिंहजी, वृद्धिचदजी भसाली, रगलालजी (आमेट) आदि तथा महिलाओ मे पानबाई, मिलापी बाई आदि कुछ बहिनें तो प्राय. पैदल ही चलती हैं।

सर्व धर्म समभाव

हमारे इस यात्री दल का एक विशेष सदस्य और है वह है सीताराम अग्रवाल। बडा मस्त आदमी है। ठेठ कलकत्ता से साथ मे है। बहुत दिनों से वह कलकत्ता से राजस्थान तक पैदल चलकर अपनी कुल देवी की अर्चना करना चाहता था। पर उसका अकेले का साहस नही हो सका। इस बार जब आचार्यश्री राजस्थान आ रहे थे तो, वह भी साथ हो गया। पहले उसका आचार्य श्री से कोई विशेष सम्पर्क ही नही हुआ था। पर अब तो इतना घुल-मिल गया कि पता ही नहीं चलता कि यह कोई नया आदमी है। धार्मिक दृष्टि से उसके विश्वास आचार्य श्री से भिन्न है। इसलिए कभी-कभी चर्चा भी चल पडती है पर व्यवहार मे यहाँ किसी का भेद नही है। यही तो सर्व धर्म समभाव की कल्पना का पहला आधार स्तम्भ है।

एक पशु यात्री

मनुष्य प्राणियो के अतिरिक्त एक पशु-प्राणी भी डालमियानगर से

निरन्तर हमारे साथ चला आ रहा है। वह है भूरे रंग का, स्वस्थ और छोटे कद का सुन्दर कुत्ता। वह भी यात्रियों मे इतना घुल-मिल गया है कि उसका घरेलू नाम 'भूरिया' ही पड गया है। सब उसे इसी नाम से पुकारते है। वह भी बडा मस्त है। आचार्य श्री विहार करेंगे तो झट साथ हो जाएगा और रास्ते भर साथ रहेगा। स्वभाव का बडा विनीत है, जहा तक होगा आचार्य श्री के पास ही रहने का प्रयत्न करेगा।

ऐसा लगता है पहले वह कही पालतू रहा है। फिर किसी कारण विशेष से वहा से हट गया है या हटा दिया गया है। डालमियानगर से एकदम यह हमारे साथ हो गया और अभी तक चला आ रहा है। कुछ दिनो तक शायद उसे खाने को भी पूरा नही मिला। पर यह साथ चलता ही रहा। अब तो यात्री लोग भी इसे पहचानने लगे है। यह भी रात मे किसी के पैरो मे जाकर सो जाता है। पर किसी चीज को खराब नही करता। थोडे ही दिनो मे अपनी प्रवृत्ति से इसने सबको आकृष्ट कर लिया है।

बच्चूसिंह भी साथ मे ही था बड़ा सज्जन और भक्त आदमी है।

८-१-६०

रात मे कृष्णनगर मे ठहरे थे। कानपुर यहा से तीन-चार मील ही पडता है। अत काफी परिचित लोग इकट्ठे हो गये। रात्री मे प्रवचन नही हो सका था। अतः प्रात काल जब लोगो को पता चला तो सब मिलकर आये और प्रवचन का आग्रह करने लगे। इसीलिए प्रात.-काल सूर्योदय के समय छोटा-सा प्रवचन हुआ। फिर कानपुर की ओर विहार हो गया।

कानपुर तो पिछले साल आचार्यश्री का चातुर्मास ही था। अतः जुलूस मे काफी लोग हो गये। यहा क्षत्रिय-धर्मशाला मे ठहरे थे। परिचितो ने स्वागत का कार्यक्रम भी रख दिया। सर पद्मपतजी सिंहानिया ने अभिनन्दन पत्र पढा। वशीधरजी कसेरा, डा० आर० के० माथुर, धर्मराज दीक्षित, परिपूर्णानन्द वर्मा, डा० जवाहरलाल तथा गिल्लूमल जी बजाज आदि ने आचार्यश्री के अभिनन्दन मे अपने-अपने हृदयोद्गार प्रकट किए। डा० जवाहरलाल भूतपूर्वमत्री (उत्तरप्रदेश) ने आचार्यश्री के चरणो की ओर देखा और कहने लगे—आचार्यजी ! आप नगे पैर कैसे चलते हैं ?" आपके सुकुमार चरणो मे रक्त चमकने लगा है। सचमुच आपकी तपस्या बडी विकट है। हम लोगो की निःस्वार्थ सेवा कर आप पुण्य-लाभ कर रहे है।

परिपूर्णानन्दजी बड़े अच्छे वक्ता हैं। खडे हो जाते है तो बोलते ही जाते है। किसी को अप्रिय भी नही लगते। उनका अध्ययन भी अच्छा है। कल्प-सूत्र मे से उन्होने कई उदाहरण प्रस्तुत प्रसग पर दिये।

कार्यक्रम काफी लम्बा हो गया था। पद्मपतजी एकदम झुझला गये। कहने लगे—हम आचार्यश्री का प्रवचन सुनने आये हैं कि इन दूसरे लोगो का ? सौभाग्य से कभी-कभी तो समय मिलता है, उसमे भी दूसरे लोग आचार्यश्री को नही सुनने देते। अन्त मे कार्यक्रम कुछ कम करना पडा। कार्यक्रम का सयोजन अणुव्रत समिति के मत्री श्री भँवरलालजी सेठिया ने किया था।

मध्याह्न मे पद्मपतजी से काफी देर तक बातें हुई। अणुव्रत विहार के बारे मे काफी विस्तार से चर्चा हुई। मुनिश्री नगराजजी भी उस समय उपस्थित थे।

पलायन से काम नही चलेगा

रात मे डा० वागची डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, लाला लाजपतराय होस्पिटल,-से काफी बातें हुई। डा० कहने लगे—आचार्यजी! मुझे भी आपके साथ ही ले लें। पद-यात्रा करता रहूगा और जैसा भी रोटी-टुकडा मिला करेगा खा लूगा। यहा के कलुषित वातावरण मे तो नही रहा जा सकता।

आचार्यश्री—यह तो ठीक है पर पलायन करने से भी तो काम नही चल सकता। मैं यह नही चाहता कि काम-काज करने वाले बहुत सारे लोग अपना-अपना काम छोडकर मेरे साथ हो जाए। अणुव्रत की परीक्षा का समय तो वही है जब मनुष्य आपत्ति मे भी अपने व्रतो का अच्छी प्रकार पालन कर सके।

डाक्टर—आपका कहना भी ठीक है। पर आजकल हास्पि-टलो का वातावरण इतना गन्दा हो गया है कि उसकी बदबू मे ठहरना कठिन हो जाता है। अभी एक बडे डाक्टर ने लोभ मे आकर एक अच्छे करोडपति नौजवान की निर्मम हत्या कर डाली, जो आज

के चिकित्सको की लोभ-वृत्ति का एक स्पष्ट उदाहरण है। नौजवान के कोई विशेष बीमारी नही थी। पर डाक्टर ने कहा इसका आपरेशन करवाना पडेगा। यदि हास्पिटिल मे आपरेशन होता तो डा० महोदय के कुछ भी हाथ नही लगता। अतः उन्होने किसी प्रकार सेठ के घर पर ही आपरेशन करवाने के लिए राजी कर लिया। घर पर सारे औजार तो आ नहीं सकते थे। अत औजारो के अभाव मे आपरेशन करते-करते ही लडके ने सदा के लिए हिलना-डुलना वन्द कर दिया। डाक्टर तो अपने रुपये ले लिये पर सेठ अब अपने लडके को किसके पास से लेता ? इस प्रकार एक नही अनेको उदाहरण है, जिन्होने चिकित्सा क्षेत्र गंदा कर दिया है। इस अवस्था मे वहा कैसे रहा जा सकता है। पर फिर भी मैं पलायन नही करना चाहता। आपकी शिक्षा के अनुसार अपने क्षेत्र मे काम करते हुए ही अपनी नैतिकता को निभाऊगा।

डा० वागची वडे सरल, सादे और मिलनसार व्यक्ति हैं। यहा के सेठिया परिवार से उसका काफी परिचय है।

●

९-१-६०

सुवह चार वजे ही मिल के भोपू की कर्कश ध्वनि से नीद उड गई। पर जल्दी उठने से स्वाध्याय हो गया यह तो अच्छा ही हुआ। आकाश धूमिल था। वातावरण कोलाहलपूर्ण था। फिर भी आज विहार से छुट्टी थी। वहुत दिनो से यह निवृत्ति मिली थी। अत. पंचमी समिति से निवृत्त हो आचार्य श्री कुछ घरो मे दर्शन देने के लिए भी गये। रह-रहकर पुरानी स्मृतिया सजीव हो रही थी। दोनो ओर वडी-वडी गगनचुम्बी अट्टालिकाएं खडी थी। नीवें भी उनकी न जाने कितनी गहरी रही होगी पर वे भरी गई थी गरीवो के परिश्रम से। सव लोग उन मनोहारी अट्टालिकाओ को देखते है पर उन्होने कही गढे वनाए हैं, उन्हे कौन देख सकता है ?

दिन भर लोगो का आगमन रहा। रिजर्व वैंक के मैनेजर श्री एम० एम० मेहरा तथा उनकी पत्नी ने जो पिछली वार अणुव्रती भी बन चुके थे काफी देर तक अनेक विषयो पर शका-समाधान किया। स्थानीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री गिल्लूमलजी वजाज आदि ने भी अणुव्रत भावना के प्रचार के वारे मे विस्तार से विचार-विमर्श किया। फिर करीव एक वजे वहा से विहार कर आचार्यश्री एलगन मिल के चीफ इंजीनियर श्री जे० एस० मुरडिया, कृषि अनुसन्धान केन्द्र के अध्यक्ष डा० आर० एस० माथुर, एडवोकेट इन्द्रजीत जैन आदि परिचित लोगो के घरो का स्पर्श करते हुए शाम को कल्याणपुर विकास केन्द्र मे पधार गये।

डा० माथुर ने तो आचार्यश्री के रात-रात अपने वगले पर ही ठहरने का प्रवन्ध कर दिया था। घूमते-घूमते वहा पहुचने तक विलम्व भी

काफी हो चुका था। पर कल्याणपुर का कार्यक्रम वन चुका था। अतः वहाँ रुकना कैसे संभव हो सकता था ?

सुगनचन्दजी ने कहा—अव दिन तो वहुत थोडा रह गया है अतः दिन छिपने से पहले-पहले कल्याणपुर पहुच जाना कठिन लगता है। मैं यह तो कैसे कह सकता हू कि यही ठहर जाए पर कठिनता अवश्य है।

आचार्यश्री ने कहा—अव तो वहुत सारे साधु तथा उपकरण भी आगे चले गए है अत. हमे भी आगे ही जाना होगा। और आचार्य श्री ने जल्दी-जल्दी अपने कदम जी० टी० रोड की ओर वढा दिये।

१०-१-६०

आज कलकत्ते से श्रीचन्दजी रामपुरिया दर्शन करने के लिए आए थे। उनसे साहित्य-विषयक लम्बी चर्चा चली। उनकी साहित्यिक प्रतिभा तेरापथी गृहस्थ समाज मे अपने ढग की एक विशिष्ट प्रतिभा है। स्वामीजी के साहित्य का तो उन्होने गम्भीर अध्ययन किया है। कहा जा सकता है वैसा अध्ययन शायद गृहस्थ-वर्ग मे किसी का नही है। परिश्रम भी उनका अनुपम है। वकालत करते हुए भी द्विशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित होने वाले साहित्य के प्रकाशन की गुरुतर जिम्मेदारी वे अकेले निभा रहे हैं। अपने साथ वे कुछ हस्तलिखित प्रतिया भी लाए थे। स्वामीजी की एक कृति व्रताव्रत-चौपई की दो-तीन प्रतियो मे से आदर्श प्रति कौन-सी मानी जाए यह परामर्श लेने के लिए ही वे उपस्थित हुए थे। एक प्रति थोडी-सी कटी हुई थी। आचार्यश्री ने पूछा—यह कटी हुई कैसे ? उन्होने कहा—असावधानी से एक बार एक चूहा पेटी के अन्दर रह गया। उसने इस प्रति को काट दिया।

जैन साधुओ की प्रतिलेखन-विधि का समर्थन करते हुए आचार्यश्री ने कहा—इसीलिए तो भगवान् महावीर ने प्रतिलेखन को आवश्यक बताया है। प्रतिलेखन न करने का ही यह परिणाम है कि चूहा इसको काट गया।

साहित्य सम्पदा

साहित्य के बारे मे आचार्यश्री ने कहा—साहित्य समाज का दर्पण

है। अभी हमारा जो साहित्य का काम चल रहा है वह तो बहुत वर्षो पहले ही चल जाना चाहिए था पर हमारा यह प्रसाद रहा कि हम ऐसा कर नही सके। हमारा यह तो सौभाग्य है कि आचार्य भिक्षु तथा जयाचार्य जैसे सहज साहित्यिक प्रतिभा के धनी हमे मिले। पर खेद भी है कि हम उन्हे प्रकाश मे नही ला सके। फूलो मे सुरभि होती है लेकिन यह तो हवा का काम है कि वह उसे प्रसृत करे। आचार्य भिक्षु और जयाचार्य ने हमे अमूल्य साहित्य दिया। पर हमारा यह कर्तव्य था कि हम उसे आधुनिक रूप में जनता के सामने रखते। खैर जो हुआ सो तो हुआ। अब भी हमने इस ओर ध्यान दे लिया है। यह हर्ष का विषय है। अपने साधु-साध्वी समाज मे मैं अनेक साहित्यकार देखना चाहता हूँ। यद्यपि उन्होने मेरी कल्पना को हमेशा आकार और रग देने का प्रयास किया है। पर इस विषय मे मेरी कल्पनाए इतनी विशाल है कि उनका बहुत छोटा-सा भाग ही अभी तक पूर्ण हो सका है। साहित्य-सेवा समाज की स्थायी सेवा है। प्रत्यक्ष परिचय तो आखिर सीमित लोगो से ही हो सकता है। साहित्य का परिचय उससे बहुत व्यापक है।

आगम साहित्य का गुरुतर भार भी हमने कधो पर ले लिया है। कार्य-भार आखिर उसी पर आता है जो कर सकता है। हमारे सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर जिस प्रकार हम पिछली कठिनाइयो को पार करते आ रहे हैं उसी प्रकार मेरा विश्वास है हमे आगे भी मार्ग मिलता रहेगा। मुनि बुद्धमल्लजी की एक कविता है न ! "चलते है जब पैर स्वयं पथ बन जाता है।"

हमारे गृहस्थ-समाज मे साहित्यकारो का प्राय. अभाव-सा ही है। कुछ साहित्यकार व्यक्ति हो गए उससे क्या हो सकता है ? मैं चाहता हू इस ओर भी प्रयत्न होना चाहिए। श्रीचन्दजी ने कितने साहित्यकारो को

तैयार किया है, यह प्रश्न मैं उनसे कर सकता हू । पर उत्तर तो उन्हे ही देना है । देखें इसका क्या उत्तर आता है ?

शाम को कानपुर मे रतनलालजी शर्मा ने आचार्यश्री के दर्शन किए । वे प्रथम बार मे ही इतने प्रभावित हुए कि उन्होने गुरु-धारणा भी कर ली ।

⊛

११-१-६०

रुपये बरसे पर......

पानी के प्रवाह की भांति हमारा दल भी जी० टी० रोड पर चल रहा था। अचानक रगलालजी को सडक पर कुछ नोट बिखरे हुए मिले। आगे चलते हुए दौलतरामजी से कहने लगे—आज रुपयो की वर्षा कैसे कर रहे हो? दौलतरामजी ने कहा—नही, मेरे पास रुपये कहां हैं?

रगलालजी—तो ये रुपये किसके गिरे है?

दौलतरामजी—मुझे तो पता नही।

रंगलालजी—तो क्या करे इन रुपयो का। यही गिरा दू? हम अणुव्रती है क्या करेंगे दूसरो के रुपयो का?

दौलतरामजी—गिराते क्यो हो? गाव मे ले चलो किसी के होंगे तो दे देगे नही तो ग्राम पचायत मे जमा करा देंगे। उनके कहने पर रगलालजी ने रुपये साथ ले लिये। गाव मे आकर पूछा तो पता चला वे तो यात्रियों के ही है। रगलालजी कोई बहुत बडे पैसे वाले नही है। पर नैतिकता कोई पैसे से थोडी ही आती है? जिसमे अध्यात्म भावना का अकुर है वह कभी दूसरो के पैसो को नही छू सकता। जहा आज पैसे-पैसे के लिए मनुष्य दूसरे से लडाई करने के लिए तैयार रहता है, वहां सत्ताईस रुपये तो बहुत होते हैं।

व्यक्ति और सिद्धांत

घोरसला पहुचकर आचार्यश्री अपने अध्ययन मे व्यस्त हो गए। एक

साधु आए, दवाई लाने की आज्ञा मागी और पारमार्थिक शिक्षण सस्था मे से होम्योपैथिक दवाइयो की पेटी लेकर चले गए। उनके चले जाने के बाद आचार्यश्री ने सस्था के सयोजक श्री कल्याणमलजी बरडिया को याद किया और उनसे पूछा—तुम लोग दवाइया कहा से लाए हो ?

उन्होने कहा—कानपुर से आर० एस० माथुर से सुमेरमलजी सुराणा ने ये दवाइया खरीदी थी और जाते समय उन्होने ये दवाइया हमे दे दी थी कि रास्ते में किसी यात्री के गडबड हो जाएँ तो काम आ सके। साधु-संतो के भी काम आ सके।

आचार्यश्री ने साधुओ से दवाइया वापस मगवाई और कहा—ये हमारे काम नही आ सकती। क्योकि इनके लाने में साधुओ के काम आने की भावना का भी मिश्रण है। अत वापस कर आओ। एक तरफ साधु बीमार थे दूसरी तरफ सिद्धात का सवाल था। आचार्यश्री ने उसी को महत्व दिया जिसे देना चाहिए। व्यक्ति से सिद्धात कई गुना बढकर है।

इस पेटी में एक दवाई वह भी थी जो डा० माथुर ने अपने घर पर आचार्यश्री को दी थी। इस भावना से कि वह आगे भी काम आती रहेगी। उसने उसे भी पेटी मे डाल दिया। पर आचार्यश्री की आखो से यह कैसे छिपा रह सकता था। इसीलिए न तो आचार्यश्री ने उनमे से दवाई ली और न कोई साधु ने भी।

चाय भी दवा है

सुबह तो हम भूखे पेट चलते ही है। इसलिए दूध, चाय का कोई प्रश्न ही नही रहता। आज भिक्षा के समय किसी के यहा चाय बनी थी। उन्होने चाय लेने का आग्रह किया। वैसे साधारणतया हम लोग चाय नही ही लेते है। पर आज मुझे कुछ जुकाम लग गया था। अत मैंने मुनिश्री सुमेरमलजी से कहा—आप थोडी-सी चाय लेते आए। वे गए

और आचार्यश्री से चाय लाने की आज्ञा मागी। तत्क्षण आचार्यश्री के ललाट पर क्यों का प्रश्नचिन्ह् अकित हो गया। पूछने लगे—किसके लिए ?

मुनि सुमेरमलजी—सुखलालजी मगा रहे है।

आचार्यश्री—क्यो ?

मुनि सुमेरमलजी—उन्हे जुकाम हो गया है।

आचार्यश्री—दवाई के रूप मे लेते हो ?

मुनि सुमेरमलजी—हा।

वे चाय ले आए। मैने पी ली। पर इस लिए कि वह दवाई थी, आज-आज मुझे दूध, दही, मिठाई, मिष्टान्न और तेल की सारी वस्तुओ का त्याग करना पडा। यह हमारी सामान्य विधि है जो कोई दवाई लेता है उसे व्यवस्थानुरूप तीन या पाच विगय का वर्जन करना पडता है। माल से जगात भारी हो जाती है। इसीलिए जल्दी से कोई दवाई लेना नही चाहता। कहा दिन मे दस-दस बारह-बारह बार चाय पीने वाले लोग और कहा चाय को भी दवा मानने वाले अकिंचन आचार्यश्री। मुझे याद नही पड़ता वर्ष भर मे ही कभी आचार्यश्री ने चाय पी हो। पिछले वर्ष शाति-निकेतन मे चीनी प्राध्यापक तानयुनसेन के घर से आचार्यश्री ने चाय ली थी। वह तो जरूर पी थी। वह भी उनके विशेष आग्रह पर चीन के अपने ढग से (भारतीय ढग से भिन्न) बनाई गई चाय का स्वाद चखने के लिए।

१२-१-६०

सेवा का अर्थ शिकायतों की पेटी में

पुराणो मे सुनते है कि सगर राजा को उसके साठ हजार पुत्र प्रति-दिन नया कुआं खोदकर पानी पिलाया करते थे। पर हम तो बिना कुआ खुदाए ही आजकल प्रतिदिन नए दूसरे कुए का पानी पीते है। एक कुएं का ही नही अपितु दिन मे कम से कम दो कुओ का। सुबह कही तो शाम कही। कही आलीशान वगले मिलते है तो कही झोंपडी भी नही मिलती, वृक्षो के नीचे रहना मडता है। जो स्थान मिलता है उसकी सफाई का वड़ा ध्यान रखते है। हम साधु लोग ही नही गृहस्थ लोग भी जहा ठहरते है वहां की सफाई का पूरा ध्यान रखते है। आचार्यश्री इस व्यावहारिक सभ्यता को भी विशेष महत्त्व देते हैं। यदि कोई साधु इसमे त्रुटि कर देता है तो उसे तो दण्ड मिलता ही है। अगर कोई गृहस्थ भी इस वात पर पूरा ध्यान नही रखता है तो आचार्यश्री उसे भी कडा उलाहना देते हैं। आज एक ऐसी ही घटना हो गई। एक वहन ने अपने ठहरने के पास के स्थान को गदा कर दिया। शिकायत आचार्यश्री के पास पहुची। आचार्यश्री ने उसे उपालंभ देते हुए कहा—तुम इतने महीनो से हमारे साथ रहकर इतनी ही सभ्यता नही सीखी तो यहा रहकर क्या किया ? हमारे साथ रहने का अर्थ तो यही होता है कि जीवन को सुसस्कृत और सभ्य वनाया जाए। यदि इतनी छोटी-सी वात को तुम नही समझ सकी तो तुमने सेवा के अर्थ को ही नही समझा। सेवा का यही मतलव नही है कि केवल मेरा मुह देखते रहना। यद्यपि हम किसी गृहस्थ से शारीरिक सेवा तो लेते ही नही। पर हम लोग जो उपदेश करते है या जो आचरण करते है उन पर तो सेवार्थी

को अमल करना चाहिए। तुमने स्थान को गदा किया वह तो सभव है फिर भी साफ हो जाएगा। पर स्थानीय लोगो पर उसका जो प्रभाव पड़ेगा वह कैसे मिट पायेगा? तुम्हे तो कोई नही जानता है। लोग कहेगे—आचार्यजी आए थे उनके साथ वालो ने हमारा स्थान गदा कर दिया। गलती तो कोई करता है और उसका भार ढोना पडता है सबको। यह अच्छा नही है।

उस वहन ने भी वडी नम्रता से अपनी त्रुटि स्वीकार की और भविष्य मे कभी ऐसी त्रुटि नही करने का आश्वासन दिया। अपनी गलती से उसे स्वयं ही वडा पश्चात्ताप हो रहा था। कहने लगी—मुझे इसका प्रायश्चित्त दीजिए ताकि मैं पश्चात्ताप से मुक्त हो सकू। आचार्य श्री ने उस गलती का उसे एक तेला (लगातार तीन दिन का उपवास) दण्ड वताया। उसने सहर्ष उसे स्वीकार किया और भविष्य में कभी अपनी गलती को नही दुहराने का आश्वासन दिया। सभी यात्रियो मे एक जागरूकता आ गई। और वे जहा भी ठहरते अपने स्थान को स्वच्छ करने का पूरा ध्यान रखते।

आहार से पहले कन्नौज के भूतपूर्व विधान-सभाई तथा कन्नौज अणुव्रत समिति के सयोजक श्री कालीचरणजी टडन ने अपने साथियो सहित आचार्यश्री के दर्शन किए। उन्होने निवेदन किया कि कम-से-कम दो दिन तो आपको कन्नौज रुकना ही पडेगा। आचार्यश्री ने कहा—दो दिन छोड हम तो यह विचार कर रहे हैं कि अभी कन्नौज जाए या नहीं? क्योकि कन्नौज जी० टी० रोड से दो मील एक ओर रह जाता है। अतः सभव नही है कि हम अभी कन्नौज जा सके।

टण्डनजी—क्यो? आप इतने वायु-वेग से क्यो चल रहे हैं?

आचार्य श्री—इसके मुख्य दो कारण हैं। पहला तो हमे इस वार तेरापथ द्विशताब्दी समारोह राजस्थान मे करना है। दूसरा मुनि श्री मखलालजी अभी आत्म-शुद्धि के लिए सरदारशहर मे आजीवन अन-

शन कर रहे है। उनकी प्रतिज्ञा है कि साठ वर्षों के वाद वे अन्न, जल कुछ भी नही लेंगे। मैं यह नही जानता कि हम उनके स्वर्गवास से पहले वहा पहुच सकेंगे या नही पर हमारा प्रयास है कि उस समय तक वहा पहुच जाए। इसीलिए अभी हम कही नही रुक रहे है। कानपुर और वनारस जैसे वडे शहरो मे भी हम दो रात नही ठहरे है। अत चाहते है इस वार कन्नौज भी न जाए।

टण्डनजी—हम कन्नौजवासियो को फिर आपके दर्शन कव होगे ?

आचार्य श्री—आप तो सरायमीरा मे आकर दर्शन कर सकते है। उन्होंने काफी आग्रह किया पर आचार्यश्री अभी कही जी० टी० रोड को छोडना ही नही चाहते हैं।

कल दिल्ली से हनुतमलजी कोठारी आए थे और निवेदन किया कि दो फरवरी तक यदि आचार्य श्री दिल्ली ठहर सके तो वहा अच्छा कार्यक्रम हो सकता है। राष्ट्रपतिजी से भी मुनिश्री वुद्धमलजी की वातचीत हुई थी। वे भी ३१ तारीख तक समय दे सकें ऐसा विश्वास है। पर आचार्य श्री ने कहा—अगर ३० तारीख तक कोई कार्यक्रम वने तो वनाया जा सकता है। इससे अधिक तो मैं वहा ठहर सकूं यह कम सभव लगता है। स्पष्ट है आचार्य श्री अभी राजस्थान पहुचने को अधिक महत्त्व दे रहे है। दूसरे सारे कार्यक्रम इतने प्रमुख नही हैं।

दांत क्यो गिरता है ?

कल-परसो आचार्य श्री का एक दात गिर गया था। अत रह-रह कर जीभ स्वत ही उस रिक्त स्थान की ओर जा रही थी। नएपन मे आकर्षण तो होता ही है।

आज आचार्य श्री कहने लगे—दात गिर जाना इस वात का सकेत है कि अव भोजन कम कर देना चाहिए। क्योंकि दातो के विना भोजन अच्छी तरह से चवाया नही जा सकता। और चवाए विना भोजन का परिपाक ठीक तरह से नही होता। अत दात गिरने का रहस्य है भोजन मे कमी कर देना।

⊙

१३-१-६०

ईक्षुरस भी नहीं

आज हवा बडी ठडी चल रही थी। थोडी-थोडी बूदे भी हो गई थी। सर्दी का तो मौसम है ही। इसलिए विहार मे काफी परेशानी रही। पर कुछ साधुओ को इससे भी बढकर एक दूसरी परेशानी हो गई। वह थी ईक्षुरस की। ईक्षुरस यहा सुलभता से मिल जाता है। पर कुछ साधुओ के स्वास्थ्य के लिए वह अनुकूल नही रहा। अत उन्हे गहरा जुकाम हो गया। मुनि महेन्द्रकुमारजी को तो इतना गहरा जुकाम हो गया कि उनका सास फूलने लगा। ठहरने के स्थान पर भी वडी देरी से पहुचे। उनसे आगे चलना सभव नही था। अत मुनि श्री नगराजजी, मुनि श्री महेन्दकुमारजी आदि कुछ साधुओ को यहा रुकना पडा। इस परिस्थिति को देखकर आज आचार्यश्री ने सभी साधुओ को ईक्षुरस पीने का निषेध कर दिया। यहा अपरिचित क्षेत्र मे छोटे-छोटे गावो मे गडवड हो जाए तो सभालने वाला कौन मिले ?

ये क्या महात्मा ?

आहार से पहले भक्तसिंह नाम के एक सिख शरणार्थी दर्शनार्थ आए। कमरे मे आते-आते उन्हे जरा सकोच हुआ। अत ठिठक गए, पर आचार्य श्री का स्मित-सकेत पाकर वे आश्वस्त हो आ गए, और अन्दर आकर बैठ गए। कहने लगे—आचार्यजी! आप साधु लोगो की भी अजब माया है। पिछले वर्ष यहा एक महात्मा आए थे। ठीक इसी जगह और इसी कमरे मे ठहरे थे। बडा ठाठ-बाट था उनका। अनेक नौकर-चाकर

हाथी, घोडे, मोटरें सभी उनके साथ थे। एक बडी भारी सोने की मूर्ति भी थी। उसे बडा सजाया जाता था। भक्त लोग उसका दूर से ही दर्शन करते थे। हमने निकट आकर उनका चरण स्पर्श करना चाहा। महात्माजी से निवेदन किया—भगवन्! हमको भी भगवान् के चरण-स्पर्श करने की अनुज्ञा दी जाए। पर महात्माजी ने मना कर दिया। हमने उनसे वहुत प्रार्थना की तो बोले—तुम लोग शुद्ध नही हो। तुम्हारा खाना शुद्ध नही है, अत तुम्हे चरण स्पर्श का अधिकार कैसे दिया जा सकता है? हमने हमारी शुद्धि के अनेक उदाहरण (पहलू) उनके सामने रखे। पर वे तो अपनी जिद्द पर अडे रहे। हम लोग नही समझ पाए कि उनकी शुद्धि और अशुद्धि की क्या परिभाषा थी? हमने देखा मूर्ति को अपने कधो पर उठाकर ले जाने वाले वे कहार जहा भी जाते तालाव पर जाकर मछलिया पकडते और खाते थे। पर वे अशुद्ध नही थे। केवल हम ही अशुद्ध थे। हमे बडी झुंझलाहट हुई आखिर यह शुद्धि और अशुद्धि क्या है?

आचार्यश्री ने स्पृश्यास्पृश्य की भावना को स्पष्ट करते हुए कहा—यह सर्वथा अनुचित है। भगवान् तो सभी के होते हैं। वे किसी मे भेद-भाव नही रखते। तव कोई उनको छू सके और कोई न छू सके यह भेद-रेखा सगत कैसे हो सकती है? छूआछूत की इस भावना ने भारत का बडा अनिष्ट किया है। सचमुच यह धर्म के ठेकेदारो की मनमानी है। पर इसके साथ-साथ भक्त लोगो मे भी एक कमी रही है। वे ऐसे साधुओं को मानते ही क्यो हैं जो मानव-मानव मे एक भेद-रेखा खीचते हैं? मैं तो स्पष्ट कहता हू यदि भक्त लोग ऐसे साधुओ का सम्मान करना छोड दें तो वे भी स्वय सीधे मार्ग पर आ जाए। यद्यपि हम लोग मूर्ति-पूजा मे विश्वास नही करते, पर कोई व्यक्ति अस्पृश्य है यह हम नही मानते। कोई भी व्यक्ति हमे छू सकता है। इसीलिए हमने अणुव्रत मे एक व्रत

रखा है—मैं किसी को अस्पृश्य नही मानूगा। सरदारजी ने आचार्य श्री से मिलकर बडी खुशी प्रकट की।

अहिंसा और देश-रक्षा

उनके साथ जगदीश नाम के एक युवक भाई भी थे। स्थानीय राष्ट्रीय स्वयं सेवक सघ के वे प्रमुख कार्यकर्ता थे। कहने लगे—आचार्यजी! अणुव्रत की दृष्टि के अनुसार इस समय जबकि चीन भारत के सिर पर बन्दूक लेकर आ खडा है किसी को नही मारने की प्रतिज्ञा कर ली जाए तो देश का काम कैसे चलेगा?

आचार्य श्री—अणुव्रत के व्रत की भाषा है "चलते-फिरते निरपराध प्राणी की सकल्पपूर्वक हत्या नही करूगा।" इसमे निरपराध शब्द एक ऐसा है जो देश रक्षार्थ किए जाने वाले प्रतिरोध मे बाधक नही बनता। अणुव्रत का यह आशय नही है कि देश की सुरक्षा भी न की जाए। उसका आशय तो यह है कि साम्राज्य-वृद्धि की भावना से किसी भी देश पर आक्रमण न किया जाए। अत आज या किसी भी स्थिति मे देश या व्यक्ति के लिए अणुव्रत अव्यवहार्य नही है।

आहार के पश्चात् पी० डब्ल्यू० डी० के इजीनियर ने काफी देर तक अणुव्रत-आन्दोलन तथा जैन धर्म के बारे मे जानकारी प्राप्त की।

१४-१-६०

शाम को आज बेवर जूनियर हाईस्कूल मे ठहरे थे। यात्री लोग सामने वृक्षो के नीचे ठहरे थे। १८-२० मील का विहार करके आए थे, अत थकना तो स्वाभाविक ही था। पर लोगो की भीड इतनी थी कि वाहर आने-जाने मे भी वडी कठिनाई हो रही थी। किसी तरह से लोगों को समझा-बुझाकर आहार के लिए स्थान का एकान्त किया। बच्चे काफी सख्या मे थे। अत आचार्यश्री ने उन्हें चित्र दिखाकर नीति के प्रति आस्थावान् बनाने का प्रयत्न किया। ऐसे अवसरो पर मनुष्य मे सुसस्कारो का एक अकुर पैदा होता है। यदि वह आने वाले आघातो तथा हिमपातो से बचता रहे तो निश्चय ही एक महान् वृक्ष के समान पुष्पित व फलित हो सकता है।

प्रार्थना हुई, दो मिनट का मौन ध्यान हुआ और आचार्य श्री ने साधुओ से कहा— साधु काफी थक गए होगे। दिन भर चलते हैं। अत आराम करना चाहे तो कर सकते हैं।

हम लोग तो आराम करने के लिए स्वतन्त्र थे पर आचार्यश्री को अभी निवृत्ति कहा थी? प्रवचन हुआ। प्रवचन मे करोडीमलजी गुप्ता ने जो पिछली वार विशिष्ट अणुव्रती बने थे, अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—अभी तक मैंने पूर्ण वफादारी से अपने नियमो का पालन किया है तथा आगे भी करता रहूगा। श्री श्यामप्रसाद वर्मा ने भी इस अवसर पर अपने कुछ विचार प्रकट किए।

उन्होने बताया जब पिछली बार आचार्य श्री यहा आए थे उसके बाद से हम लोगो मे अपने व्रतो के प्रति सतत जागरूकता रही है। यह कहना सही नही है कि लोग एक बार व्रत ले लेते हैं और फिर उनका पालन नही करते। यद्यपि कुछ लोगो मे शिथिलता आजानी भी सभव है पर फिर भी काफी लोग अपने व्रतो का अच्छी तरह से पालन करते हैं।

●

१५-१-६०

कीचड तो आज भी था। पर ठहरने का स्थान अच्छा था। श्री जानकीशरण डोडा के मकान मे आचार्यश्री ठहरे थे और पास वाली धर्मशाला मे हम लोग ठहरे थे। डोडा स्वयं अणुव्रती हैं और यहा अणुव्रत-भावना के प्रसार मे भी अच्छा सहयोग दे रहे है। उन्ही के आयास से मध्यान्ह मे स्कूल के विशाल प्रागण मे एक महती सभा मे आचार्यश्री ने प्रवचन किया। सभी छात्रो ने संकल्प किया कि वे विद्यार्थी-वर्ग के अणुव्रतो का पालन करेंगे। नागरिको ने भी अनेकविध-सकल्पो से अणुव्रत के नियमो पर चलने का निश्चय किया। पिछली बार जब आचार्यश्री यहा से आए थे तो स्थान-स्थान पर अणुव्रत समितियों की स्थापना हुई थी। उनमे से अब भी अनेक समितिया सक्रिय है। आचार्यश्री तथा साधुओ की अनुपस्थिति मे भी स्थानीय कार्यकर्ता यथासाध्य अच्छा कार्य कर रहे हैं।

रात का विश्राम-स्थल सुलतानगज के बी० डी० ओ० के क्वार्टर्स थे। शाम को सारा कार्य-निपटाने मे थोडा-बहुत विलम्ब हो ही जाता है। अत वन्दना का शब्द सकेत हो जाने के बाद भी सभी साधु एकत्र नहीं हो सके थे। बूढा सूर्य थक कर अस्त हो चुका था। उसके वियोग मे दिशाए विधवा वनिताओ की भाति कृष्णदुकूल पहन कर अपना शोक-प्रदर्शन कर रही थी। प्रतीची अब भी स्त्री-सुलभ रग-विरगी आकर्षक पोशाक पहने हुए थी। शायद वह चन्द्र के आगमन की प्रतीक्षा मे थी। अत अधकार का बोध नही हो रहा था। पर सूर्य इस पृथ्वी-तल से जा चुका था यह स्पष्ट ही था। साधु लोगो को अभी तक उपस्थित

होते नही देखकर एक साधु ने दुबारा शब्द-सकेत करना चाहा। पर आचार्य श्री ने कहा—यह अनवस्था अच्छी नही है। अतः वे भी चुप रह गए। इतने मे तो हम लोग भी पहुच गए। आचार्य श्री के मुख-मुकुर पर उनकी आत्मा का जो प्रतिविम्ब था, उसे देखकर अनेक आशकाए खड़ी हो गई। कुछ निवेदन करें इससे पहले ही आचार्यश्री ने उपालम्भ दे दिया। क्यो शब्द नही सुना था क्या? शब्द सुनकर भी दूसरे कार्यों मे लगे रहते हो तो फिर उसकी प्रामाणिकता का क्या आधार रह जाता है? आज एक बार शब्द कर देने पर दूसरी बार और सकेत करने की आवश्यकता रह जाती है, तो कल फिर तीसरी बार की भी अपेक्षा क्यो नही होगी? जो कार्य जिस नियत समय पर करना चाहिए उसमे विलम्ब नही होना चाहिए। बस आचार्य श्री का इतना उपालम्भ तो काफी था। अब जल्दी से हमारी ओर से ऐसा प्रमाद नही होगा, ऐसा विश्वास है। प्रमाद हो जाना कोई बडी बात नही है। वह सकारण भी हो सकता है। पर एक नेता उसे कैसे क्षम्य कर सकता है?

प्रतिक्रमण के बाद मिश्रजी आ गए। उनसे अणुव्रत के प्रसार के बारे मे काफी लम्बी चर्चा चली। मिश्रजी का सुझाव था कि हमे अपने कार्य क्षेत्र का विभाजन कर देना चाहिए। जितना भी क्षेत्र हम लेना चाहे उसे आठ-दस या इससे कम अधिक विभागो मे बाट कर एक-एक साधु-दल को तथा कुछ गृहस्थ कार्यकर्ताओ को अलग-अलग उत्तर-दायित्व देकर उनमे बैठा देना चाहिए। क्योकि एक बार आचार्यश्री या साधु-साध्वी वर्ग जिस क्षेत्र मे काम करता है वहा पर फिर उचित देख-रेख या मार्ग-दर्शन नही रहे तो किया हुआ कार्य पुन विस्मृत हो जाता है। अत. जो भी कार्य-क्षेत्र हम चुने वहा पर सातत्य रहना चाहिए। ऐसा नही होना चाहिए कि एक बार उधर गए और फिर लम्बे समय के लिए उसे भूल ही गए। अच्छा तो यह हो कि जो दल जिस क्षेत्र मे कार्य करता है उसे पाच-चार वर्षो तक वही रहने

दिया जाए। यदि वार-वार परिवर्तन होता रहे तो उससे वहुत सारा समय तो परिचय वढाने मे ही लग जाता है। इससे कार्य की गति नही वढ पाती। एक वर्प मे एक दल ने जितना परिचय किया उतना समय दूसरे दल को पुनः परिचय वढाने मे लग जाता है। जो क्षेत्र कार्य के लिए चुने जाए वहा एक-एक साधु-दल का रहना अत्यन्त आवश्यक है। क्योकि हमारा आन्दोलन सयम का आन्दोलन है। सयम की वात सहज-तया तो गले उतरनी ही कठिन है। विना सयमी साधुओ के तो वह और भी कठिन है। गृहस्थ कार्यकर्ताओ का सहयोग भी आवश्यक है। पर उससे पहले कि वे कार्यभार सभालें उन्हे प्रशिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक क्षेत्र मे एक-एक, दो-दो ऐसे सक्रिय कार्यकर्ता होने चाहिए जो आत्म-निर्भर हो। उनका थोडा-वहुत सहयोग किया जा सकता है। पर प्रमुख रूप से उन्हे अपना निर्वाह अपने आप ही करना चाहिए। इस प्रकार से यदि हम व्यवस्थित रूप से कार्य करेंगे तो आशा है वह वेग पकड लेगा। अणुव्रत समय की माग है। उसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। आचार्यश्री ने इन सारे विपयो पर विचार कर कोई निश्चित कार्यक्रम वनाने की भावना प्रकट की।

१६-१-६०

प्राची मे सूर्य ने अपना अस्तित्व व्यक्त किया तो ऐसा लगा मानो चिर-विरहिणी पूर्व-दिशा ने प्रिय आगमन पर अपने शीश पर सौभाग्य-विन्दु लगाया है। हम मानो उस शुभ-शकुन की प्रतीक्षा मे खडे हो। अत सूर्योदय होते ही आगे के लिए चल पडे। मौसम प्राय साफ था। वायुमडल स्वच्छ था। तरुगण पर्याप्त प्राण-वायु वितरित कर रहे थे। सूर्य की शुभ्र रश्मिया प्राण तत्त्व विखेर रही थी। सारे शरीर मे एक प्रकार की तरलता छा रही थी। हम मानो हवा मे तैरते हुए त्वरित गति से लक्ष्य की ओर वढे चले जा रहे थे। चलने का आनन्द भी इसी ऋतु मे है। प्रारम्भ मे थोडी सर्दी लग सकती है पर थोडा-सा चल लेने के वाद स्वत. शरीर मे गर्मी हो जाती है और अपने आप पैर आगे वढते जाते है।

सायकाल कगरोल पहुचे तो वहुत सारे लोग स्वागत के लिए सामने आए। स्थान पर आने के वाद एक भाई आचार्यश्री के पैर दवाने लगे। आचार्यश्री ने कहा—भाई! हम लोग किसी गृहस्थ से शारीरिक सेवा नही लेते। तो वे कहने लगे—आचार्यजी! आप तो किसी से सेवा नही लेते पर हमारे लिए ये पवित्र चरण कहा पडे है? थोडा तो हमे भी लाभ उठाने दीजिए। इतनी दूर चलने से आपके सुकोमल चरण थक गए होगे। हम लोगो को यह सौभाग्य फिर कव मिलेगा? उन्हे समझाने मे वडी कठिनाई हुई। सचमुच भक्ति तर्क की पकड मे नही आ सकती।

ठहरने के लिए प्राय. विद्यालय ही मिलते है। इससे दोनो ओर

लाभ है। हमे स्थान मिल जाता है और विद्यार्थियो को स्वत ही देश के महान् सत के सम्पर्क तथा सदुपदेश का अवसर मिल जाता है। आज भी कुरावली मे नार्मल स्कूल मे ही ठहरे थे। वहा पचास के करीब भावी अध्यापको ने आचार्य श्री के प्रवचन से लाभ उठाकर अनेकविध प्रतिज्ञाएं की। रात्रि मे साधक अवसानसिंहजी से अनेकान्तवाद, स्याद्वाद आदि दार्शनिक तत्त्वो पर चर्चा हुई। उनकी पुत्री केशर बहन भी यहां अध्यापन कराती है। उसने भी अणुव्रत के सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न पूछे। केशर बहन एक शिक्षित बहन है। तथा उसका आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने का सकल्प है। उसने अणुव्रत के सारे नियम देखकर उनका पालन करने का सकल्प किया।

१७-१-६०

रात्रि के पिछले प्रहर मे जब हम गुरु वन्दन के लिए पहुचे तो आचार्यश्री पूछने लगे—स्वाध्याय किया था ?

हम—हा पातजल योग दर्शन का स्वाध्याय भी किया था और मुनिश्री नथमलजी के पास वाचन भी किया था।

आचार्यश्री—सबको याद है ?

हम—हा, हम पाच सहपाठियो मे प्रायः सभी को याद है ?

आचार्यश्री—आजकल स्थान की सुविधा नही रहती है अन्यथा मैं अपने पास उसका अध्ययन करवाता। हमारे लिए इससे बढकर सौभाग्य की क्या बात हो सकती थी कि हम आचार्यश्री के पास अध्ययन करें। इस कल्पना ने ही हमारे मन मे अध्ययन के प्रति एक नई प्रेरणा भर दी।

यहा से विहार कर अगले गाव जा रहे थे तो बीच मे मलावन नाम का एक गाँव पडता था। पिछली बार जब हम यहा ठहरे थे तो यहाँ एक अणुव्रत समिति का गठन भी हुआ था। आज भी सयोजक महोदय ने जो यहाँ की माध्यमिक स्कूल के प्राध्यापक भी है बहुत आग्रह किया, कुछ देर तो आपको यहा रुकना ही पड़ेगा। उनके आग्रह पर आचार्यश्री ने छात्रो को कुछ सबोध दिया, तदनन्तर आभार प्रदर्शन करते हुए प्राधाध्यापक कहने लगे—मैंने बार-बार अणुव्रत के नियमो को पढा है और जितनी बार मैं उन्हे देखता हू विचार आता है—अणुव्रत क्या है—मनुष्य का एक मान-दण्ड है। जो व्यक्ति इन सारे नियमो को ग्रहण कर लेता है वह वास्तविक मानव है। जो आधे नियमों को ग्रहण करता है

वह अधूरा मानव है। जो चौथाई नियमो को ग्रहण करता है वह चौथाई मानव है। जो इन्हे ग्रहण नही करता वह तो मानव क्या दानव ही है। अत अणुव्रत वास्तव मे मनुष्य को मापने का एक यन्त्र है। आचार्यश्री ने इसका प्रचार कर देश का बडा भारी भला किया है। भले ही इन स्वरों मे श्रद्धा की सान्द्रता हो, पर वह तथ्य से विमुख नही है। सायकाल हम लोग एटा पहुँच गये। वहा पडित मनोहरलालजी से जैन एकता के बारे मे लम्बी चर्चा चली।

●

१६-१-६०

शाम को सिकन्दराराऊ से विहार कर नानऊ नहर कोठी आ रहे थे तो स्थान-स्थान पर इतने ग्रामीण दर्शनार्थ खड़े थे कि आचार्यश्री को दसो जगह ठहरना पडा। अत मे समय थोडा रहा था। कुछ स्थानो पर तो आचार्यश्री रुक ही नही सके। मार्ग मे एक स्थान पर प्रभुदयालजी डाबडीवाल ने दर्शन किये। वे अभी राजस्थान से आ रहे थे। आचार्य गौरीशकरजी भी साथ मे थे। उन्होने निवेदन किया—मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी का स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया है। आशा नही की जा सकती कि वे इस बार जीवन और मृत्यु के सघर्ष मे विजयी बन सकें। आचार्यश्री ने कहा—मृत्यु ने अनेक बार उनके दरवाज़े खटखटाये है पर वे सदा उसे टालते रहे है। पर फिर भी उसका भरोसा तो नही ही किया जा सकता। एक क्षण मे वह चैतन्य को मिट्टी की ढेरी बना देती है। हमने तो उनसे मिलने के लिए बहुत प्रयत्न किया है। इतने लम्बे-लम्बे विहार किये है। पर होगा तो वही जो विधि को मान्य है।

प्रतिक्रमण के बाद दूर-दूर से बहुत सारे ग्रामीण एकत्र हो गये थे। सर्दी भी कडाके की पड रही थी। पास मे ही बहने वाली नहरो ने वातावरण को और भी शीतल बना दिया था। ग्रामीण बेचारे फटे-हुए तथा मलिन कपडो से शीत से अपनी रक्षा करने का असफल प्रयत्न कर रहे थे। एक तरफ उनकी उस दयनीय दशा का चित्र था तो दूसरी तरफ उनकी उत्कट भक्ति छलछला रही थी। अत. मुनिश्री चम्पालालजी ने निवेदन किया—आज प्रवचन प्रार्थना से पहले ही हो जाय तो अच्छा

रहे। लोग दूर-दूर से आ रहे है। आचार्यश्री को भी यह सुझाव अच्छा लगा। अत प्रार्थना से पहले ही प्रवचन हो गया।

प्रवचन के वाद प्रार्थना प्रारम्भ हुई। करीव आधी प्रार्थना हुई होगी कि चन्दनमलजी कठौतिया आये और आचार्यश्री के कान मे कुछ कहकर वैठ गये। एक साथ आचार्यश्री ने उच्च स्वर से प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी। प्रार्थना समाप्त होने पर आचार्यश्री ने एक गहरा नि श्वास छोड़ते हुए कहा—अभी चन्दनमलजी ने सूचना दी है कि दिल्ली से टेली-फोन मे मत्री मुनि के देहावसान का समाचार प्राप्त हुआ है। सुनकर दिल को एक गहरा धक्का लगा। ऐसा धक्का कि जैसा कालूगणी के स्वर्गवास पर लगा था। इसीलिए यह सुनते ही मैंने प्रार्थना जोर-जोर से गानी प्रारम्भ कर दी। आत्मा नही चाहती कि इस समाचार को सत्य मान लिया जाय। मत्री मुनि हमारे वीच मे नही रहे हैं यह कल्पना ही सूनी-सी लगती है। पर जो कुछ हो गया सो तो हो ही गया। अत आज के ध्यान को हमे उनकी स्मृति मे ही परिणत कर देना चाहिए। सभी ने चार 'लोगस्स' का ध्यान किया।

ध्यान के वाद आचार्यश्री ने दिवगत आत्मा के प्रति जो भाव व्यक्त किये वे वडे ही मार्मिक थे। यद्यपि रात्रि के कारण वे शव्दश तो नही लिखे जा सके पर स्मृति मे जो कुछ रहा वह यह था—मत्री मुनि सच-मुच शासन के स्तम्भ थे। उनके गुण अवर्णनीय थे। उनके देहावसान से जो स्थान रिक्त हुआ है वह पुन भरना वडा कठिन है। उन्होने मुझे आचार्य-पद की प्रारम्भिक अवस्था मे जो सहयोग दिया, उसे कभी भुलाया नही जा सकता। मै जानता हू उन्होने सतो मे तथा श्रावको मे मेरे प्रति किस प्रकार श्रद्धा भरी है। उनका धैर्य अतुलनीय था। वात को पचाने की उनकी क्षमता तो सचमुच अकल्पनीय थी। जो वात नही कहने की होती वह हजार प्रयत्नो के वाद भी कोई उनसे नही सुन सकता था।

आचार्यों को भी वे उतनी ही बात कहते जितनी उपयुक्त होती। उनके शब्द थोडे होते थे तथा भाव गम्भीर होता था। विनय की तो मानो वे साक्षात् मूर्ति ही थे। उनके अनुभव, प्रौढ तथा मार्ग-दर्शक होते थे। सचमुच उन्होने शासन की बडी सेवा की है।

रह-रह कर आचार्यश्री की स्मृतिया जागृत हो रही थी और एक अपार वेदना शब्दो द्वारा बाहर निकलना चाहती थी। अत मे आचार्यश्री ने सभी साधुओ को सम्बोधित कर कहा—"मैं तुमसे उनके गुणो की क्या कहू? उनके गुण अगण्य थे। कोई भी साधु उन सारे गुणो को धार सके तो मुझे बडी खुशी होगी। पर यदि कोई एक नही धार सके तो सघ के सभी साधु मिलकर उनकी रिक्तता की पूर्ति करें।"

वातावरण मे एक अजीब खामोशी थी। प्रहर रात्रि के बाद भी किसी की उठने की इच्छा नही हो रही थी। पर अब हो क्या सकता था? मृत्यु को कौन रोक सकता है? वह आती है और एक न एक दिन सभी को अपने अक मे समेट कर ले जाती है। बहुत देर तक उनकी स्मृतियों का ताता लगा रहा। वह तभी रुका जब नीद ने आकर घेरा डाला।

२०-१-६०

अलीगढ मे आचार्यश्री के स्वागत की जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही थी। सभी वर्ग के लोगो मे एक नवोल्लास व्याप्त हो रहा था। कुछ लोग पैदल चलकर दो-तीन मील तक स्वागत करने के लिए सामने आये थे। शहर मे आते-आते जुलूस काफी वड़ा हो गया। ज्योंही हमने राम-लीला भवन मे पैर रखा दिग्-दिगन्त जयघोषो से मुखरित हो उठा। आचार्यश्री ने अपना आसन ग्रहण किया कि इतने मे एक ऐसी अप्रत्याशित घटना हुई कि सभा में सन्नाटा छा गया। वावू रामलालजी जो अभी तक आचार्यश्री के साथ चल रहे थे अचानक पडाल मे गिर पड़े। गिरते ही उनकी हृदय-गति रुक गई। उनका पुत्र जो स्वयं डाक्टर था, आया उन्हे इजेक्शन भी दिया। पर उनका चैतन्य किसी दूसरे शरीर को धारण कर चुका था। अत. उनकी चिर-निद्रा को जगाने के सारे प्रयत्न विफल गये। स्वागत मे आये हुए लोगो को शव-यात्रा मे जाना था। अतः स्वागत का कार्यक्रम रात्रि के लिए स्थगित कर दिया गया। केवल आचार्यश्री ने मन्द-मन्द स्वर मे "मोहे स्वाम सभारो" गीतिका गाई तथा जीवन की अचिरता पर प्रकाश डालते हुए कहा—ऐसी मृत्यु मैंने अपने जीवन मे कभी नही देखी, वावू रामलालजी सचमुच एक पवित्र व्यक्ति थे। इसी-लिए अतिम सांस तक उनका मन ही नही वल्कि तन भी सतो के चरणो मे रमा हुआ था। जो उनकी सद्गति का स्पष्ट सकेत है। सचमुच अनेक लोगो को उनकी इस चिर-निद्रा से स्पर्धा हो सकती है।

वावू रामलालजी अलीगढ़ के प्रमुख जन-सेवियो मे से एक थे। वैसे नगर मे धनवान् तो उनसे और भी वहुत अधिक हो सकते थे। पर सेवा-

भाव से जो प्रतिष्ठा उन्होने अर्जित की थी वह बहुत ही कम लोगों को मिली थी। वे स्थानीय अणुव्रत-समिति के एक प्रमुख सदस्य थे। आज के आयोजन को सफल बनाने के लिए उन्होने अथक परिश्रम किया था। आज आचार्यश्री को अपने बीच पाकर वे फूले नही समा रहे थे। सभवतः इसी हर्षातिरेक से उनकी हृदयगति रुक गई थी। जीवन का यह क्षण-भगुर पात्र कितना विचित्र है कि अतिरिक्त सुख और दु ख न स्वय ही उसमे से बाहर छलक पडते है अपितु उसे भी विनष्ट कर देते है।

मध्याह्न मे मत्री मुनिश्री मगनलालजी के स्वर्गारोहण के उपलक्ष मे आचार्यश्री की अध्यक्षता मे स्मृति-सभा का समायोजन किया गया। तेरापथ के इतिहास की यह एक विरल घटना थी जो सभवत अपने ढग की प्रथम ही थी। किसी भी साधु के स्वर्गगमन को लेकर आचार्यश्री ने स्मृति-सभा की समायोजना की हो ऐसा अवसर अभी तक नही आया था। पर मत्री मुनि की गुणाढ्यता ने आचार्यश्री के मन मे इतना स्थान प्राप्त कर लिया था कि उसका यह तो एक बहुत ही अल्प-प्राण परिचय था। आज के युग मे शोक-सभाओ का प्रचलन साधारण हो गया है। पर आचार्यश्री मृत्यु को शोक के रूप मे नही देखना चाहते। वह तो जीवन की एक अनिवार्य शर्त है। जिसे हर किसी को पूरा करना ही पडता है। अत उसके लिए शोक क्यो किया जाय ? मनुष्य अपने जीवन के साथ मृत्यु का सौदा करके आता है। सौदा समाप्त हो जाने के बाद सभी को यहा से जाना ही पडता है। फिर साधुओ के लिए तो शोक का कोई प्रश्न ही नही उठता। उनके लिए तो समाधि-मरण एक महोत्सव है। तब उसके लिए शोक कैसा ? हा उनके गुणो की स्मृति अवश्य प्रेरक बन सकती है। इसीलिए आचार्यश्री शोक-सभा को स्मृति-सभा कहना अधिक उपयुक्त समझते है।

मुनिश्री चम्पालालजी, मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री नगराजजी

आदि साधुओ ने मत्री मुनि की यशोगाथा गाते हुए अपने पर किये गए उपकारो का सविस्तार वर्णन किया। मुनिश्री नगराजजी ने उनकी अमेय-मेघा की सराहना करते हुए कहा—मुझे अपने जीवन मे अनेक न्याय-विदो से मिलने का अवसर मिला है। पर मैंने मत्री मुनि मे जिस न्याय-विशदता के दर्शन किये वह सचमुच विलक्षण थी। उनका यह गुण मेरे मन पर छाप छोड जाने वाले वहुत-थोडे से व्यक्तियो मे से उन्हे भी एक प्रमुख पद प्राप्त करवा देता है। सचमुच तेरापथ सघ के वे एक ऐसे छत्र थे जिसकी छाया मे प्रत्येक सदस्य ने यथावश्यक विश्राम किया है।

आचार्य श्री ने उन्हे अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करते हुए कहा—यद्यपि अन्तिम क्षणो मे मैं उनके पास नही रह सका। पर मुझे उनकी ओर से कोई अतृप्ति नही है। मुझे उनके लिए जो कुछ करना था वह जी भर कर किया तथा जो कुछ लेना था वह जी भर कर लिया। अव मुझे कोई अभाव नही खलता है। वे भी सभवत अपने आप मे पूर्ण-काम थे। वैसे आचार्य-दर्शन की उत्कण्ठा तो सभी मे रहना स्वाभाविक ही है। पर ऐसी कोई कामना सभवत उनमे नही रही थी जिसे पूर्ण करने के लिए मुझे उनसे मिलना आवश्यक रहा हो। उन्होने इन वर्षो मे दारुण-वेदना सही थी। पर मैं कह सकता हू कि उनकी जैसी सेवा-व्यवस्था सर्व सुलभ नही है। वे एक सौभागी पुरुष थे। जिस सौभाग्य से उन्होने शासन से सम्वन्ध किया था उसी सौभाग्य से उन्होने मृत्यु का आलिगन किया है। उन जैसी स्मृति तो वहुत ही कम लोगो को प्राप्त हुई थी। उन्होने शासन की श्रीवृद्धि के लिए जो अथक-आयास किए हैं वे युग-युग तक तेरापथ के इतिहास मे अमर रहेगे। अनेक लोग उनके स्फूर्ति-शील जीवन से प्रेरणा लेकर अपने आपको कृतार्थ करेंगे। उनमे व्यक्ति-गत इच्छा तो जैसे नही के वरावर थी। शासन से ऐसा तादात्म्य वहुत कम लोगो मे ही पाया जा सकता है। गुरु की दृष्टि के वे हमेशा सन्मुख रहे हैं। उन्हे कुछ कहना तो दूर रहा अगर यह आभास भी हो जाता

कि आचार्य की ऐसी दृष्टि है तो प्राण-पण से उसे पूर्ण करने के लिए जुट पड़ते। वे अनेक झझावातो मे शासन के सफल सेवक रहे हैं। मुझे शासन के ऐसे विशिष्ट सदस्य पर गर्व है। पर आज तो केवल उनकी स्मृति ही शेष है। अत मे आचार्यश्री ने उनकी स्मृति मे कुछ दोहे कहे—

वयोवृद्ध शासन सुखद, मंत्री मगन महान्।
माह वदि छठ मंगल दिवस, कर्‌यो स्वर्ग प्रस्थान ॥१॥

अद्‌भुत अतुल मनोबली, गण में स्तम्भ सधीर।
दृढ़प्रतिज्ञ सुस्थिर मति, आज विलायो वीर ॥२॥

उदाहरण गुरु भक्ति को, दिल को बड़ो वजीर।
सागर सो गंभीर वो, आज विलायो वीर ॥३॥

विनयी विज्ञ विशाल मग, मनो द्रौपदी चीर।
सफल सुफल जीवन मगन, आज विलायो वीर ॥४॥

नानऊ कोठां नहर में, सांझ प्रार्थना लीन।
सुण सचित्र सारा रह्या, उदासीन आसीन ॥५॥

रिक्त स्थान मुनि मगन रो, भरो संघ के संत।
मगन-मगन पथ अनुसरो, करो मतो मतिवंत ॥६॥

'सुख' अब कर अनशन सुखे, आज फली तुम आश।
हाथो में थारे हुयो, बाबा रो स्वर्गवास ॥७॥

कुछ अन्य साधुओ ने भी मत्री मुनि के प्रति भाव भरी श्रद्धांजलियां समर्पित की। यद्यपि मत्री मुनि इन वर्षो मे काफी अवस्थ रहे थे। उन्हे देखते ही मानस-सरोवर मे एक प्रकार की करुण लहरें तरगित हो उठती थी। पर उनका निधन उससे भी अधिक हृदय-विदारक था। सबके मुह पर जैसे एक उदासी छा गई थी।

स्मृति-सभा के अत मे हासी निवासी भाइयो ने हांसी मे मर्यादा-

महोत्सव करवाने की जोरदार प्रार्थना की। जिसे आचार्यश्री ने स्वीकार कर लिया। पिछले कुछ दिनो से मत्री मुनि की अस्वस्थता के समाचार आ रहे थे। अत विचार हो गया था कि शायद महोत्सव तक आचार्य श्री सरदारशहर पहुच जाए। पर अब यह कारण सर्वथा निरस्त हो चुका था। मत्री मुनि स्वय ही नही रहे तो उन्हे दर्शन देने का प्रश्न ही नही उठता। मुनिश्री सुखलालजी का अनशन जरूर आकर्षण का केन्द्र था। पर आचार्यश्री का विश्वास था कि मुनिश्री सुखलालजी विना दर्शन स्वर्गगमन नही करेंगे। अतः गति मे पूर्ववत् वेग नही रहा। हासी महोत्सव की घोषणा ने उसे और भी पुष्ट कर दिया।

रात्री मे आचार्यश्री के स्वागत का कार्यक्रम रखा गया था। सर्दी काफी थी फिर भी काफी लोग आए थे। सबसे पहले श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने स्वागत-भाषण किया। तदनन्तर रामगोपालजी "आजाद" ने अभिनन्दन-पत्र पढा।

२१-१-६०

प्रात काल विहार मे पहले आचार्य श्री स्वर्गीय बाबू रामलालजी के घर उनकी पत्नी को दर्शन देने के लिए पधारे। आचार्य श्री ने उन्हे इस असमय-वज्रपात से सभलने की प्रेरणा दी। जिससे उन्हे बहुत सात्वना मिली।

विहार के समय यहाँ के अनेक कार्यकर्ता बहुत दूर तक पहुचाने आए और भविष्य मे अणुव्रत भावना को यहाँ के वातावरण मे सजीव रखने का सकल्प व्यक्त किया।

मत्री मुनि के स्वर्गगमन के सवादो से वातावरण आर्द्र हो रहा है। एक तार सरदारशहर से श्री जयचन्दलालजी दफ्तरी का आया। उन्होने लिखा था—मत्री मुनि के निधन पर सारा तेरापथी समाज शोकातुर है। यहां के सारे बाजार तथा गवर्नमेंट आफिस बन्द रहे। शव-यात्रा मे लगभग २५-३० हजार आदमी थे। बाहर से बहुत लोग आए। जैन और जैनेतरो ने समान रूप से शव-यात्रा मे भाग लेकर मत्री मुनि के प्रति जनसाधारण की श्रद्धा को अभिव्यक्त किया।

एक सवाद सुजानगढ निवासी शुभकरणजी दस्सानी का आया। उन्होने लिखा था कि—इस अवसर पर मत्री मुनि के अचानक निधन का समाचार पाकर मुझे खेद हुआ। निश्चय ही उनके निधन से समाज मे एक ऐसी रिक्तता हुई है जो निकट भविश्य मे पाटी नही जा सकती। उनके निधन से आचार्य प्रवर ने एक महान् परामर्शदाता ही नही खोया अपितु एक ऐसा व्यक्ति खो दिया है जो उनके जीवन की भाग्यश्री तथा

दूसरी भुजा थी। तेरापथ जगत् इस महान् व्यक्ति का सदा ऋणी रहेगा। वे अर्ध शताब्दी तक इस धर्म-सघ की रीति-नीति को अक्षुण्ण रखते हुए दूसरो मे गुरु के प्रति श्रद्धा और प्रामाणिक वने रहने की भावना भरते रहे हैं। बुद्धि का उत्कर्ष, दीर्घ-दृष्टि और दृढ-सकल्प; ये उनके अनन्य गुण थे। जिनकी तुलना कर सकने मे दूसरे वहुत अ शों तक असमर्थ रहेगे। वे श्रामण्य के मूर्तरूप थे। उनके निधन से निश्चय ही एक ऐसे महान् व्यक्ति का निधन हो गया है, जिसका सारा जीवन ही एक आदर्श की आराधना मे लगा था। सचमुच उनकी जीवन-गाथाए तेरापथ के इतिहास के पृष्ठो मे स्वर्णिम रेखाए होगी। आचार्यवर को वन्दन।

आज गाव मे दिन भर आचार्यश्री के चारो ओर मेला-सा वना रहा। कई बार प्रवचन-सा हो गया। फिर भी कुछ लोग तो विहार-वेला तक आते ही रहे। दूर-दूर से आने वाले कुछ लोग तो आचार्य-दर्शन से वचित ही रह गए। काफी लोगो ने दूर-दूर तक दौडकर आचार्य-श्री के दर्शन किये। सचमुच आचार्यश्री जिस ओर जाते हैं जन-समुदाय उलट पडता है। यह सव साधना का ही तो परिणाम है। आचार्यश्री कोई ऐसे राज्याधिकारी तो हैं नही जो लोगो की भौतिक अभितृप्तियों के सहयोगी वन सकें। अध्यात्म जैसा नीरस विषय भी उनके जीवन-सम्पर्क से सचेतन और आकर्षक होकर लाखो-लाखो लोगो मे स्पन्दित हो रहा है। ऐसा लगता है जैसे विषय कोई नीरस नही होता। उसको प्रवाहित करने वाला व्यक्तित्व समर्थ होना चाहिये।

प्रतिदिन पाद-विहार से आहत होकर एक साधु मुनि महेशकुमारजी आज चलने मे असमर्थ हो गए। उनके पैर सूज गए अत उनके साथ एक और साधु मुनिश्री सम्पतकुमारजी को छोडकर आचार्यश्री ने आगे की ओर प्रयाण कर दिया।

२२-१-६०

सडक पर तो सबको चलने का अधिकार है। एक मनुष्य को भी और एक पशु को भी। आचार्यश्री चल रहे थे। आगे-आगे एक गाडी चल रही थी। भार से लदी हुई थी। एक स्वयसेवक आगे जाकर गाडी-वान से कहने लगा—गाडी को एक तरफ कर लो। पीछे-पीछे आचार्यश्री आ रहे थे। कहने लगे—बहुत रास्ता पडा है बेचारे बैलो को क्यों तकलीफ देते हो ? हम तो एक ओर से होकर चले जाएँगे। स्वयसेवक चुप रह गया। गाडी अपने रास्ते पर चलती गई और हम एक ओर मुडकर आगे निकलने लगे। आचार्यश्री जब बैलो के एकदम पास आए तो देखा—गाडीवान बैलो को छडी से पीट रहा है। छडी की नोक मे लोहे की एक सूई लगी हुई है उसे बैलो के कोमल गुप्तागो मे चुभा-चुभा कर वह उन्हे तेज चलने के लिए विवश कर रहा है। आचार्यश्री से यह दृश्य देखा नही जा सका। तत्क्षण चरण रोक कर गाडीवान से बोले—भैया ! बैल बेचारे चल रहे हैं फिर तुम उनके गुप्तागो मे यह सुई क्यो चुभो रहे हो ? गाडीवान ने बात को सुनी अनसुनी कर दी। वह अपनी धुन मे ही नही समा रहा था। आचार्यश्री भी उस पर कोई असर नही होता देखकर आगे चल पडे। मन मे विचार आते रहे—भारत का ग्रामीण कितना अशिक्षित है ? निश्चय ही उसके आर्थिक-स्रोत अत्यन्त क्षीण हैं। पर उसके साथ अशिक्षा भी कम नही है। निर्दयता तो परले सिरे की अशिक्षा है। इसीलिए तो शास्त्रो मे शिक्षा को विद्या कहा गया है। विद्या ही मुक्ति का साधन है। जो विद्या नही है वह अविद्या है और अविद्या ही तो बन्धन का कारण है। क्या एक दिन ऐसा आएगा

जब भारत से यह अशिक्षा का आवरण दूर हो जाएगा ?

खुर्जा मे पहुचे तो एक शिक्षित समाज के सम्पर्क मे आने का अवसर मिला। भोजनोपरान्त सस्कृत पडितो की एक सभा आचार्यश्री के सान्निध्य मे हुई। बहुत सारे सस्कृतज्ञो ने उसमे भाग लिया। मुनिश्री नथमलजी ने 'जैन-दर्शन' पर सस्कृत मे धारा-प्रवाह भाषण किया। तेरापथ सघ की सस्कृत प्रगति से उन लोगो को बडा आश्चर्य हुआ। प्राय सस्कृतज्ञ लोग उदार दृष्टि से देखने के अभ्यास से वचित रहते है। पर यहा के विद्वानो मे ऐसा नही था। उनका दृष्टिकोण उदार तथा सहिष्णु था। उन्हे तेरापथ के इस प्रगति-परिचय से बडा हर्ष हुआ। हमे भी उनके सम्पर्क से बडी खुशी हुई। आचार्यश्री ने कहा—मुझे ऐसा पता नही था कि यहा इतने सस्कृतज्ञ लोग रहते हे। यदि ऐसा पता होता तो हम यहा ठहरकर आपस मे कुछ आदान-प्रदान करते। सचमुच गोष्ठी का वातावरण अत्यन्त सरस और प्रेरक था।

यद्यपि आज ठहरने का स्थान बहुत अच्छा था। स्थान क्या था एक महल ही था। पर हमारी गति को रोकने मे वह असमर्थ ही रहा। जो महान् लक्ष्य को लेकर चलते है वे इन मोहक आवासो मे कैसे उलझ सकते है ? मनुष्य का जीवन भी एक यात्रा है। बहुत सारे लोग सुन्दर और सुखद आवासो को देखकर वही रुक जाते है इसीलिए तो वे जीवन मे से रस नही पा सकते जो रस निरन्तर बढने वाले पाते है।

शास्त्रो मे ठीक ही कहा है—

चरन् वैमधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम्,
सूर्यस्य पश्य श्रेमाण यो न तन्द्रयते चिरम्।

चलने वाला मधुर फल पाता है, सूर्य के परिश्रम को देखो जो चलने में कभी आलस्य नही करता। इसीलिए हम भी चले जा रहे हैं।

बीच मे जे० एस० कालेज मे पचासो शिक्षको तथा पन्द्रह सौ विद्यार्थियो के बीच आचार्यश्री ने भाषण किया। प्रवचन बडा प्रभावशाली रहा। अध्यापको तथा छात्रो का उत्साह भी सराहनीय था। पीछे पता चला कि उन लोगो ने आचार्यश्री के भाषण का टेप-रिकार्डिग भी कर लिया था।

आचार्यश्री को प्रवचन करने मे थोडा विलम्ब हो गया था। अतः कुछ साधु आगे चलने लगे। पर अगले गाव के दो रास्ते थे। एक जरा सीधा और दूसरा कुछ घुमावदार। सीधे रास्ते मे ककर बहुत थे तथा दूसरे रास्ते मे चक्कर अधिक था। कुछ साधु सीधे रास्ते चले गए और कुछ साधु घुमाव लेकर सडक वाले रास्ते चले गए। दोनो आखिर मिल तो गए ही पर सीधे जाने वालो के पैर ककरो से फूट गए। निश्चय ही सीधे चलने वालो को कष्ट तो उठाना ही पडता है पर वे लक्ष्य पर भी बहुत शीघ्र पहुचते है। घुमाव लेने वाले भी लक्ष्य पर तो पहुचते ही हैं पर कुछ देर से। महाव्रत और अणुव्रत के पार्थक्य को समझने के लिए यह उदाहरण बडा स्पष्ट था।

हम सडक पर से होकर गुजर रहे थे। एक ग्रामीण भाई हमसे पूछने लगा—क्या आप खादी वेचते है? हमारे कधो पर रखे हुए बोझ को देखकर यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही था। दूसरे हम पैदल चल रहे थे। चेहरे पर दैन्य तो था ही नही। अत पुरानी वेशभूषा मे छिपे हुए व्यक्तित्व को देखकर उसके मन मे आज से बीस वर्ष पहले के स्वतन्त्रता सग्राम की कल्पना साकार हो उठी। और वह पूछने लगा—क्या आप खादी बेचते हैं?

हमने सयत स्वरो मे उत्तर दिया—नही भाई! हम लोग तो पद-यात्री है और अभी दिल्ली जा रहे हैं। दिल्ली का नाम लेते ही उसकी कल्पना एक साथ वर्तमान युग पर आ टिकी। कहने लगा—तो क्या दिल्ली मे

कोई प्रदर्शन होने वाला है ? जिसमे आप भाग लेने के लिए जा रहे है। आपकी क्या माग है ? अब हमे हसी आए विना नही रही। अधरो पर हास्य की रेखाए खिच गई ।

उन्हे रोक कर हमने कहा—नही भाई ! हम तो साधु है। जीवन-भर पैदल ही चलते हैं। अभी दिल्ली जा रहे है। यह कहकर हम आगे चल पड़े। पर वह वेचारा उस घटना के ही चारो ओर घूम रहा था। मन मे आया—आज से वीस वर्ष पहले के भारत मे और आज के भारत मे कितना विभेद है ? उस कल्पना मे त्याग की रेखाए उभरी हुई है और इस कल्पना मे अधिकारो की विभीषिका।

●

२३-१-६०

आज मध्याह्न मे सिकन्दराबाद मे अग्रवाल इन्टर कालेज मे हजारों छात्रो के बीच मे प्रवचन हुआ। प्रिंसिपल श्यामबिहारी ने आचार्यश्री का हार्दिक स्वागत किया तथा अपने छात्रो को अणुव्रत के पथ पर ढालने का आश्वासन दिया। यहाँ सिकन्दराबाद मे इधर तो आचार्यश्री प्रवचन कर रहे थे और उधर जोखाबाद मे जहा हमे रात को ठहरना था एक बड़ी विचित्र घटना हुई। आचार्यश्री का विलसूरी से प्रस्थान हो जाने के बाद यात्री लोग जोखाबाद की ओर चल पडे। जोखाबाद एक बिल्कुल छोटा-सा कस्बा ही था। अत स्थान भी थोडा ही था। यात्री लोग काफी सख्या मे थे। उन सबको अपने गाव की ओर आते देख गाव वालो के दिल दहल उठे। सोचने लगे ये इतने लोग क्यो आ रहे है ? क्या ये हमारे गाव को लूटेंगे ? तभी तो इनके पास इतनी मोटरें है। अत वे गाव के बाहर लाठिया लेकर खडे हो गये और आने वाले यात्रियो को गाव मे नही जाने दिया। यात्रियो ने बहुत समझाया, हम आचार्यश्री के साथ चलने वाले लोग हैं। रात-रात यहा ठहरेंगे और सुबह आगे चले जाएगे। पर उन्होने एक न सुनी और किसी को गाव मे पैर नही रखने दिया।

यात्री लोग दौडे-दौडे आचार्यश्री के पास आये और बोले—वहा तो गाव मे पैर ही नही रखने देते। आचार्यश्री भी क्षण भर के लिए विस्मय मे पड गये। सोचने लगे क्या किया जाय ? इधर प्रिंसिपल का बहुत आग्रह था कि रात-रात आचार्यश्री कालेज मे ही ठहरे और जिज्ञासु छात्रो को बोध देने की कृपा करें। उधर साधु लोग आगे चले गए थे, गाव वाले स्थान देने के लिए तैयार नही थे सो अलग बात। अतः आचार्यश्री ने

चन्दनमलजी कठौतिया से कहा—क्या किया जाय ? क्योकि वे ही आगे का स्थान तय करके आये थे । उन्होंने कहा—एक वार आप कुछ भी न कहे । जो सत आगे चले गये है उन्हे वही रोक दें । मैं जाकर देखता हू कि क्या मामला है ? वे झट से आगे गये और गाव वालो से जो लाठिया लिए गांव के वाहर खडे थे, पूछा—क्यो भाई क्या वात है ? लोगो को जाने क्यो नही देते ?

ग्रामीण—जाने कैसे देते आपने ही तो कहा था कि आचार्यजी और कुछ साधु-सत आने वाले हैं । साधु-सत क्या ऐसे ही होते है ? इन लोगों के पास तो सामान से गाडिया भरी हुई है । न जाने ये कौन लोग हैं ?

चन्दनमलजी ने उन्हे समझाया—ये तो अपने ही लोग है । आचार्यश्री की सेवा मे आये हुए हैं । कोई गैर आदमी नही है । तव जाकर उन्होंने यात्रियो को गाव मे प्रवेश करने दिया । चन्दनमलजी ने वापिस आकर आचार्यश्री से सूचना की तव हम सभी जल्दी-जल्दी चलकर आगे पहुँचे आचार्यश्री पहुँचे तव तक तो दिन वहुत ही थोडा रह गया था ।

रात्री मे प्रवचन हुआ तो ग्रामीण लोग वडे प्रभावित हुए । अव उन्होंने क्षमा मागते हुए कहा—आचार्यजी ! हमे पता नही था कि आप लोग ऐसे महात्मा हैं ! हमने तो आपके भक्त लोगो को देखकर समझा जाने ये कैसे साधु होंगे ? आजकल साधु के वेश मे वडा पाखण्ड चलता है । डाकू लोग साधु का रूप वनाकर आते है और गाव को लूटकर चले जाते हैं । इसी भावना से हमने लोगो को गाव मे नही आने दिया । पर अव हमे आपकी साधना का पता चला है । आशा है हमारी धृष्टता को आप क्षमा कर देंगे ।

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए कहा—नही इसमे धृष्टता की क्या वात है ? विचारणीय वात तो साधु वेश के लिए है कि उसे दुष्ट लोगो ने कितना कलुपित वना दिया है ।

२४-१-६०

चलते-चलते मेरे पैर इतने घिस गए कि एक पैर मे तो मवाद ही पड़ गया। इन दिनो मे मुझे बडी भयकर वेदना सहनी पड रही थी। चलने मे तो कष्ट होता ही था पर रात भर नीद भी नही आती थी। पैर मे इतनी जोर से पीडा होती थी कि सारा मन व शरीर काप उठता। आज प्रात.काल जब आचार्यश्री के पास आया तो आचार्यश्री ने पूछा—क्यों आगे चले जाओगे या रुकना पडेगा ?

मैंने कहा—अब तो दिल्ली निकट ही है, चला ही जाऊगा। यहां रुककर क्या करूगा ? वहा अलबत्ता साधन तो सुलभ हो सकेंगे। इसलिए धीरे-धीरे आगे के लिए चल पड़ा। पर आचार्यश्री के पास क्या कुछ हो रहा है, इससे अपरिचित ही हो गया था।

मुनि महेशकुमारजी भी पैर की पीड़ा के कारण पीछे रुक गए थे। अतः वे आचार्यश्री से पीछे रह गए। मुनिश्री सम्पतमलजी को भी आचार्यश्री ने इनकी परिचर्या के लिए वहां छोड दिया था। वे भी आज विहार कर आ रहे थे। शाम को मुनिश्री सम्पतमलजी उनका सारा वोझ-भार लेकर आहार पानी की व्यवस्था के लिए आगे आ गए। जहा उन्होने ठहरने का निश्चय किया था। आगे आकर उन्होने सारी व्यवस्था कर ली और महेशकुमारजी की प्रतीक्षा करने लगे। पर महेशकुमारजी शाम तक वहा नही पहुचे। उन्हे बड़ी चिन्ता हो गई। अब क्या किया जाए ? सर्दी का मौसम था, रात के समय हम चल नही सकते थे। उधर महेश-कुमारजी के पैर का दर्द इतना बढ गया था कि वे एक कदम भी आगे

नही चल सकते थे। जैसे-तैसे कर वे एक निकट के गाव 'धूम' मे जाकर रात्रि मे एक मकान मे ठहर गए। उनके पास बिछाने के लिए कोई वस्त्र न था और न ओढने का ही। पौष का महीना और वह दिल्ली की ठडक। रात-भर उन्होने पैरो को सीने मे दबोच कर निकाली। हम लोग यहा मकान मे ठहरे हुए थे तो भी सर्दी से ठिठुर गए। उन्हे जाने कितनी सर्दी लगी होगी ? रात कैसे बिताई होगी इस कल्पना से ही कपकपी छुटने लगी।

●

२५-१-६०

आज रात्रि मे दिल्ली के पत्रकारो, साहित्यकारो व नागरिको ने दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी हाल मे आचार्यश्री का अभिनन्दन किया। सर्व प्रथम दिल्ली अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्रीगोपीनाथजी ने एक कविता कहकर आचार्यश्री का अभिनन्दन किया।

योजना आयोग के सदस्य श्री श्रीमन्नारायण ने कहा—हमारे देश की आत्मा को सदा सतों ने ही पोषण दिया है। सदियो तक उनके उपदेश नागरिको के कर्ण विवरो मे गूजते रहे हैं। क्योकि उनका जीवन स्वयं त्याग और सयम की भूमि पर आधारित रहता है। पर उन लोगों का हमारे देश पर कभी प्रभाव नही रहा, जिनका आधार ही अनीति रहा है। आचार्यश्री ने हमे उसी सत-परम्परा से परिचित कराया है। भले ही आपका नाम अखबारो मे नही आता हो, जन-जन के मानस पर आपका जो नाम उल्लिखित हो गया है वह मिटाया नही जा सकता।

मुनिश्री बुद्धमल्लजी ने जो गत दो वर्षों से इसी क्षेत्र मे विहरण कर रहे थे आचार्यश्री का स्वागत करते हुए कहा—आचार्यश्री जो कुछ करते है वह अपने से अधिक औरो के लिए होता है। आप स्वय पैदल चलकर लोगो को सन्मार्ग दिखाते हैं। यह तथ्य इसका स्पष्ट प्रमाण है।

प्रजा समाजवादी पार्टी के अध्यक्षश्री मीरमुश्ताक अहमद ने आचार्यश्री का स्वागत करते हुए कहा—सतो का जीवन प्रेरणा का अजस्र प्रवाह है। आचार्यश्री के सान्निध्य ने मुझे भी अपना आत्मालोचन करने का

अवसर दिया है। अतः आज से मैं यह प्रयत्न करूंगा कि विशेषरूप से अपनी क्रोधी प्रकृति पर विजय पाऊं तथा अपनी आभ्यन्तरिक कमजोरियों को दूर करू।

नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्रीअक्षयकुमार जैन ने कहा—आज देश मे नीति मूलक उपदेशो की अत्यधिक आवश्यकता है और उससे भी अधिक आवश्यकता है आचार्यश्री जैसे त्यागी महात्माओ के सान्निध्य मे बैठकर अपने जीवन को सात्विक बनाने की।

प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीजैनेन्द्रकुमारजी ने कहा—दिल्ली की एक विशेषता है कि वह सदा स्वागत करती है। किन्तु हमारे यहा आने वाले अतिथियो मे अधिक लोग वे होते है जो हवा मे उडकर पृथ्वी पर आते हैं। किन्तु आज जिनका स्वागत हो रहा है वे निरन्तर पृथ्वी पर ही चलकर आए है। आपने देश मे एक आस्था जागृत की है। यदि आपके मार्ग-दर्शन के अनुसार चला जाए तो देश का जीवन बहुत कुछ ऊचा हो सकता है।

श्री यशपाल जैन ने कहा—राजनीति त्याग करने की बुद्धि नही दे सकती। वह बुद्धि तो कोई मानव नीति का समर्थक ही दे सकता है। मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल' ने एक सरस कविता से आचार्यश्री का अभिनन्दन किया।

नई दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री वसन्त-राव ओक, श्री गुरुप्रसाद कपूर, श्री जनार्दन शर्मा तथा श्री मोहनलाल कठौतिया ने भी इस अवसर पर आचार्यश्री को अपनी श्रद्धाजलियां समर्पित की।

आचार्यश्री ने अपने प्रति प्रदर्शित किये गए अभिनन्दन का उत्तर देते हुए कहा—दिल्ली मे जितनी नैतिक तथा चारित्रिक उन्नति होगी देश का भाल उतना ही गर्वोन्नत रहेगा। आज करोडो लोगो मे अणुव्रत-

भावना का सचार हुआ है इसका अधिक श्रेय राजधानी को ही है। हमने जो कार्य किया वह किसी पर उपकार नही किया है अपितु अपना कर्तव्य निभाया है। उसी प्रकार दूसरे लोग इस प्रकार के कार्यो मे सहयोग देकर विभिन्न वर्गो के नैतिक स्तर को समुन्नत बनाएगे ऐसी मैं आशा करता हू।

आज का कार्यक्रम बडा ही रोचक एव व्यवस्थित रहा। सभी लोगों को उससे अनेकविध प्रेरणाए मिली। रात्रि को आचार्यश्री ने लाइब्रेरी हाल मे ही शयन किया।

२६-१-६०

२६ जनवरी भारत के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ है। आज के दिन भारत ने अपने सविधान को मान्यता दी थी। अतः सभी लोग हर्षोद्रेक से आप्लावित हो रहे थे। दिल्ली भारत की राजधानी है अत. यहां यह दिवस बडी धूमधाम से मनाया जाता है। बहुत दिनो से लोग इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर-दूर से अनेक लोग विशेष रूप से यहां आये हुए थे। प्रात काल राजधानी के प्रमुख मार्गो से होकर केन्द्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारो की ओर से भव्य झाकियो का प्रदर्शन किया गया। देश के विकास-विभव को भी विभिन्न झांकियो के माध्यम से अच्छे ढंग से प्रदर्शित किया गया था।

●

२७-१-६०

प्रातः साढे आठ वजे आचार्यश्री का सब्जीमण्डी बिड़ला हायर सैकेण्ड्री स्कूल मे छात्रो के वीच प्रवचन हुआ । उस अवसर पर केन्द्रीय शिक्षा सचिव श्री के० जी० सैयदेन, कृषि मन्त्री श्री पजावराव देशमुख तथा दिल्ली जन-सम्पर्क समिति के अध्यक्ष श्री गोपीनाथजी आदि विचारक भी उपस्थित थे ।

श्री देशमुख ने आचार्यश्री का अभिनन्दन करते हुए कहा—हमारे देश की सस्कृति के मूल मे सदा त्याग और संयम रहा है । यहा उन्ही लोगो का समादर होता आया है जो लोग अपने जीवन को त्यागमय बनाते है । पर आज हम लोग अपने उस आदर्श को भूलते जा रहे हैं । हमारे विद्यार्थियो को धर्म के वारे मे कुछ भी नही वताया जाता । पर इन सव के बावजूद भी यह खुशी की वात है कि आचार्यश्री आज विद्यार्थियो मे अपना त्यागमय उपदेश देने आये है । सचमुच इस मार्ग पर चलकर ही हम अपने राष्ट्र को सुदृढ और सुव्यवस्थित बना सकते है ।

भारत सरकार के शिक्षा सचिव श्री के० जी० सैयदन ने अपना भाषण करते हुए कहा—भारत के लिए आज अनुशासन और सयम की जितनी आवश्यकता है उतनी शायद और किसी भी विज्ञान की नही है। क्योकि अनुशासन और सयम के विना जीवन का निर्माण नही हो सकता। और अव्यवस्थित जीवन मे कोई भी विज्ञान शाति-प्रेरणा नही भर सकता। महात्मा गाधी ने सयम के आधार पर ही देश को विदेशी सत्ता से मुक्त करवाया था । उसी प्रकार आचार्यश्री तुलसी अनेक कठिनाइया सहकर

भी जन-जन को नैतिकता और सदाचार का सदेश सुनाते है। इसीलिए आपने हजारो मीलो की पद-यात्रा की है। हम भारत की राजधानी मे आपका अभिनन्दन करते हैं।

आगे उन्होंने कहा—जीवन मे तब तक कोई परिवर्तन नही आ सकता जब तक कि हमारा मन नही बदल जाए। इसलिए आवश्यकता है हम अपने मन को बदलने का प्रयास करें। यही बात आज आचार्यश्री विद्यार्थियो से कहने आये हैं। विद्यार्थियो के लिए आचार्यश्री ने पाच प्रतिज्ञाए निर्धारित की हैं। यदि हमारे विद्यार्थी उन्हे अपने जीवन मे स्थान देकर चलेंगे तो मुझे आशा है हमारे देश का कायाकल्प हो जाएगा।

आचार्यश्री ने विद्यार्थियो को सम्बोधित करते हुए कहा—देश मे आज अनेक समस्याए हैं। उनमे विद्यार्थी वर्ग भी एक समस्या बन गया है। सचमुच यह समस्या समाधान मागती है। इसे किसी भी हालत मे उपेक्षित नही किया जा सकता। देश का प्रत्येक विचारक व्यक्ति इसके हल का प्रयत्न करता है।

आगे विद्यार्थी के जीवन का चित्र बनाते हुए आचार्यश्री ने कहा—विद्या प्राप्त करने का अधिकारी वही है जो विनीत है, नम्र है तथा जिसका जीवन सात्विक और सयमी है। कानून तथा दण्ड-बल विद्यार्थियो को अनुशासित नही बना सकते। विद्यार्थियो की स्वय प्रेरणा ही इस सम्बन्ध मे कुछ फल ला सकती है। वे जब तक आत्मानुशासन नही सीखेंगे तब तक किसी भी सुधार के सफल होने की आशा नही की जा सकती। उन्हे हर परिस्थिति मे आत्मानुशासन को महत्व देना होगा।

आज का यह कार्यक्रम अणुव्रत विद्यार्थी अनुशासन दिवस के रूप मे आयोजित किया गया था। इसी प्रकार नगर के लगभग बीस हायर सैकेण्डरी स्कूलों मे साधु-साध्वियो के भाषण हुए थे। हजारो विद्यार्थियो ने इस अवसर पर अणुव्रत प्रतिज्ञाएं ग्रहण की थी।

प्रातः साढे सात बजे कठौतिया भवन मे नेपाल के प्रधानमत्री श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने आचार्यश्री के दर्शन किये। आचार्यश्री ने उन्हे अणुव्रत-आन्दोलन की विविध गतिविधियो से परिचित कराया तथा द्विशताब्दी समारोह की पूर्ण जानकारी दी। श्री कोइराला ने अणुव्रत-आन्दोलन को जनता के लिए अत्यधिक उपयोगी बताते हुए हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की।

●

२८-१-६०

बिडला मन्दिर मे आयोजित एक प्रेस कान्फ्रेंस मे आचार्यश्री ने कहा—मैं कलकत्ते से पद-यात्रा करता हुआ आया हू और राजस्थान की ओर जा रहा हू। लगभग एक हजार मील की यात्रा हो चुकी है और पाच सौ मील की यात्रा अभी तक बाकी है। अभी-अभी मैं जो राजस्थान जा रहा हूं इसके पीछे एक उद्देश्य है। उदयपुर डिवीजन मे राजसमद मे तेरापथ सघ का द्विशताब्दी समारोह आयोजित होने वाला है। मैं उसी मे सम्मिलित होने का उद्देश्य लेकर उस ओर जा रहा हू। उसका प्रारभ आषाढ पूर्णिमा से होगा और वह सभवत ६ महीनो तक यथासभव रूप से चलता रहेगा। इस अवधि मे विविध प्रकार के कार्यक्रमो की आयोजना की गई है। तेरापथ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु की रचनाएं तेरापथी महासभा द्वारा मूल व अनुवाद सहित प्रकाशित की जा रही है। उस समय ४०-५० पुस्तको का नया साहित्य प्रकाश मे आ सकेगा। ऐसी सभावना है। इससे न केवल हिन्दी साहित्य की ही समृद्धि बढेगी अपितु अनेक मौलिक विचार भी देश के सामने आएगे। हस्तलिखित ग्रन्थो, चित्रो तथा अन्यान्य कलात्मक वस्तुओ की एक अच्छी प्रदर्शनी का आयोजन भी इस अवसर पर हो सके, ऐसा कुछ लोग प्रयत्न कर रहे हैं।

मेरी यात्रा का दूसरा उद्देश्य है—एक मुनि का आमरण अनशन। सरदारशहर मे हमारे सघ के एक मुनि जिन्होने अपने जीवन मे लम्बी-लम्बी विचित्र तपस्याए की है, अब आमरण अनशन पर हैं। इसका सकल्प वे २४ वर्ष पहले ही कर चुके थे। मुनि के लिए तपस्या के उद्देश्य दो-

नही होते। जो उद्देश्य एक दिन की तपस्या का होता है, वही आजीवन अनशन का होता है। वे केवल जीवन-शुद्धि के लिए अनशन कर रहे हैं। जहा भौतिक पदार्थो के प्रति तीव्रतम आसक्ति है, वहां शरीर और उसके पोषण के प्रति अनासक्ति का भाव प्रबल होता है। वह सचमुच ही दर्शनीय है।

अपने प्रवचन के अत मे आचार्यश्री ने कहा—मैंने इन दो वर्षों मे उत्तरप्रदेश, बिहार और वगाल की यात्रा की है। अणुव्रत-आन्दोलन की भावना को जन-साधारण तक पहुचाने का प्रयास किया है। भारतीय मानस मे व्रत का सहज सस्कार है। इसलिए वह उसकी ओर आकृष्ट होता है। पर आर्थिक प्रलोभन के कारण उस तक पहुंचता नही है। नैतिकता के अनेक महत्त्वपूर्ण पहलुओ मे भारत वहुत आगे है। अनाक्रमण, शाति और मैत्री की भावना उसमे परिव्याप्त है। आर्थिक भ्रष्टाचार जो बढा है वह सधिकाल की देन है। उसे मिटाने का यत्न करना आवश्यक है। इस वर्ष आन्दोलन ने मिलावट, रिश्वत और मद्य-निषेध, इस त्रिसूत्री कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित किया था। इसे तीव्र गति से चलाने की आवश्यकता है। मैं चाहता हू इसके लिए एक सवल वातावरण वनाया जाय।

प्रेस कान्फ्रेस मे राजधानी के प्राय. सभी अंग्रेजी, हिन्दी तथा उर्दू समाचार-पत्रो और समाचार समितियो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। प्रवचन के वाद थोड़ा-सा प्रश्नोत्तरो का भी कार्यक्रम रहा।

रात्रि के शात वातावरण में गीता भवन मे एक विचार परिषद् का आयोजन किया गया था। सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस श्री बी० पी० सिन्हा ने उसकी अध्यक्षता की। विचारणीय विषय था—विश्व-स्थिति और अध्यात्म।

मुनिश्री नथमलजी ने उक्त विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—सरकार सत्ता और प्रतिष्ठा का प्रश्न जहा प्रमुख तथा आत्मा का सम्बन्ध गौण रहता है वहा असुरक्षा, भय और अतृप्ति पैदा होती है। यही कारण था जिससे मानव मस्तिष्क मे शस्त्र की कल्पना हुई। शस्त्रों की कल्पना आज विश्व मे पूर्ण विकास पर है। अत आज यह नितान्त अपेक्षित हो गया है कि मनुष्य भौतिकवाद से हटकर अध्यात्मवाद की ओर आये जो कि सुरक्षा, अभय और तृप्ति का हेतु है।

ससद सदस्या डा० सुशीला नायर ने कहा—आज का युग विज्ञान का युग है, सत्य की शोध का युग है। पर अहिंसा के अभाव मे यह सभव नही होगा। यही कारण है कि मनुष्य आज दयनीय है।

चीफ जस्टिस ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा—अपने जीवन के इन ६० वर्षो मे मैं पढने और पढाने मे ही रहा। यहा भी मैं कुछ बताने नही आया हू, अपितु आचार्यश्री के दर्शन करने तथा उनसे कुछ सुनने समझने को आया हू। आज विज्ञान ने तरक्की की है पर उसका केन्द्र अध्यात्म नही है। इसलिए वह वरदान नही बन रहा है। आचार्यश्री एक अध्यात्म पुरुष है। इनके सान्निध्य तथा शिक्षाओ से हमारा बडा लाभ होने वाला है।

आचार्यश्री कहते हैं—आज मनुष्य की आकाक्षाए बहुत बढ़ गई हैं। एक जीवन ही नही अपितु हजारो जीवनो मे भी वे शात नही हो सकती। किन्तु तथ्य यह है कि जब तक आकाक्षाए कम नही होगी तब तक जीवन हल्का नही बन सकेगा।

मुनिश्री नगराजजी ने अपना भाव पूर्ण भाषण करते हुए कहा—विज्ञान ने दुर्बल मानव को जो सामर्थ्य दिया है उसका उदाहरण प्राचीन इतिहास मे कही नही मिलता। आज वह पक्षियो की तरह उडकर आकाश को पार कर देता है तथा मछलियो की तरह तैरकर समुद्र को पार कर

देता है। दिव्य दृष्टि की भाति वह भूगर्भ के रहस्यो को भी जान लेता है। ब्रह्माड के एक छोर पर बैठकर दूसरे छोर तक की बात सुन लेता है। वह चन्द्रलोक मे पहुचने की तैयारी कर रहा है। किन्तु अणु अस्त्रों की विभीषिका ने मानवीय सभ्यता और सस्कृति को विनाश के कगार पर लाकर खडा कर दिया है। उसके एक हाथ मे जीवन है और दूसरे हाथ मे मृत्यु। सुख, सग्रह तथा सोने के ढेर से नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसके लिए अन्तर्मुखी प्रवृत्तिया और अध्यात्म की खुराक आवश्यक है।

योजना आयोग के सदस्य श्री श्रीमन्नारायण ने कहा—आज विज्ञान ने अध्यात्म को आच्छन्न कर दिया है। पर मेरा विश्वास है कि विज्ञान ही आगे जाकर अध्यात्म मे परिणत होने वाला है। हमारे ऋषि मुनि परम चिंतक और वैज्ञानिक थे। विज्ञान सिर्फ भौतिक नही होता। अध्यात्म के अभाव मे वह केवल ज्ञान रह जाता है। अत. ज्ञान को अगर विज्ञान होना है तो उसे अध्यात्म के अचल मे आना होगा।

प्रमुख विचारक श्रीजैनेन्द्रकुमार ने अपने चिंतनपूर्ण भाषण मे कहा—आज सेना और शस्त्र कम करने का सवाल उठाया जाता है। पर विज्ञान के क्षेत्र मे भयकर प्रतिस्पर्धा हो रही है। आज प्रगति की कसौटी ही विज्ञान बन गया है। जो देश विज्ञान के क्षेत्र मे पिछड गया वह आज अशक्त माना जाता है। मेरी विज्ञान मे भी आस्था है और धर्म मे भी आस्था है। वह धर्म, धर्म नही है जो विज्ञान से विमुख है। वैज्ञानिक का जीवन एक सत की तरह स्वच्छ तथा सयत होता है। विज्ञान मे अवगुण नही है। किन्तु स्वार्थी लोगो के ससर्ग से उसमे दुर्गुण आ जाते है। वस्तु का स्वभाव धर्म है। इसीलिए विज्ञान का सब पदार्थो के साथ समन्वय है।

आचार्यश्री ने अपने उपसहारात्मक भाषण मे कहा—आज के विश्व

की स्थिति बड़ी समस्या सकुल है। इसका अगर कोई समाधान हो सकता है तो वह एकमात्र अध्यात्म ही है। विचार का प्रभाव जड पर नही होता, चेतना पर ही हो सकता है। आकाश के लिए धूप और वर्षा का उपग्रह या अवग्रह नही हो सकता।

आज ख्रुश्चेव और आइक शाति की बातें करते है, पर उनके अतिरिक्त अशाति पैदा की ही किसने है। अत विना अशाति के कारणो को मिटाये शाति की चर्चा करना निरर्थक है।

अहिंसा और समता ही सच्चा विज्ञान है। शासन किसका रहे और किसका न रहे यह चिंता हमे नही करनी है। हमे अपने शासन मे रहना है। अगर हम अपने शासन मे रहेगे तो दूसरा कोई हमारे पर शासन नही कर सकता। शासन तो तव आता है जब व्यक्ति स्वय शासित नही रहता। इसीलिए आत्मानुशासन और अध्यात्म आज के इस समस्या सदोह का समाधान हैं।

विचार-परिषद् का यह आयोजन बहुत ही आकर्षक रहा। विचारकों के अच्छे और सुलझे विचारो ने सभी श्रोताओ को चिंतन मनन के लिए बहुत ही उत्कृष्ट खुराक प्रस्तुत की।

आयोजन के बाद काफी देर तक आचार्यश्री से जैनेन्द्रजी ने सथारे के बारे मे चर्चा की। उनका मत इस सम्बन्ध मे आचार्यश्री के मत से विपरीत था।

२६-१-६०

आज प्रातःकाल राष्ट्रपति भवन मे आचार्यश्री ने राष्ट्रपतिजी से बातचीत करते हुए उन्हे चालू यात्रा के बारे मे बताते हुए कहा—हमने अपनी यात्राओ मे सबसे मुख्य बात यह पाई कि ग्रामीणो मे आज भी नीति और धर्म के प्रति आस्था है। साधुओं के प्रति सच्ची श्रद्धा है। वे एक हद तक साधुओ के उपदेशो को स्वीकार भी करते है। पर उन लोगों तक साधु बहुत ही कम पहुचते हैं।

द्विशताब्दी समारोह का परिचय देते हुए आचार्यश्री ने राष्ट्रपतिजी को सघ मे चलने वाले आगम कार्य से भी अवगत कराया। इस महत्व-पूर्ण शोध-कार्य की जानकारी पाकर राष्ट्रपतिजी ने हार्दिक शुभकामना प्रकट करते हुए कहा—भारत मे सदा से ऋषि महर्षियो का स्वागत होता आया है। उनके माध्यम से ही देश ने साहित्यिक तथा चारित्रिक क्षेत्र मे महत्वपूर्ण प्रगति की है। राष्ट्रोत्थान के कार्य मे भी साधुओ का बडा भारी हाथ रहा है। उनसे त्याग और सयम का मार्ग दर्शन पाकर राष्ट्र ने बहुत कुछ विकास किया है। सचमुच आप उसी परम्परा को उज्जीवित कर रहे हैं। आचार्यश्री ने राष्ट्रपति जी को घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी के सथारे के बारे मे बताया तो उन्होने इस विषय मे अनेक जिज्ञासाए की तथा ऐसे तपस्वी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि समर्पित की। उन्हे कुछ नया साहित्य भी भेंट किया गया तथा इस विषय मे उनकी सम्मतिया पाने की भी इच्छा व्यक्त की गई।

तत्पश्चात् प्रधानमत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से उनकी कोठी पर आचार्यश्री का वार्तालाप हुआ। नेहरूजी ने आचार्यश्री का स्वागत करते

हुए कहा—आप अणुव्रत के माध्यम से जन-जन को जागृत करने का जो महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, उसका मैं सदैव प्रशसक रहा हूं। अनास्था के इस युग मे सत्पथ पर चलना बहुत ही बडी बात है। फिर भी आप जनता को यह रास्ता दिखा रहे हैं, यह समाज के लिए बहुत ही उपयोगी है। मूल्याकन परिवर्तन की यह प्रक्रिया शान्ति तथा चरित्र को महत्व देगी।

आचार्यश्री ने प्रधानमत्री को बताया कि मध्यम स्तर के लोगो पर आन्दोलन का अनुकूल प्रभाव पड रहा है, पर उच्चस्तरीय लोग अब भी मुडने के लिए तैयार नही हैं। इस बार भारत की महानगरी कलकत्ता मे हमने देश-प्रतिष्ठित उद्योगपतियो की एक सभा करने का प्रयत्न किया था। पर वह सफल नही हो सका।

प्रधानमंत्री—क्यो ?

आचार्यश्री—इसलिए कि लोग साधुओ के पास आने मे सकोच करते है। विशेष कर हम लोग जब प्रवचनो मे अनतिकता के बारे में खुलकर कहते हैं तो वे लोग उसे सहन नही कर सकते। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से अनेक उद्योगपतियो से मेरी बातें हुई थी। पर सामूहिक रूप से कोई मोड लेना उनके लिए असभव था। उन्होने मुझे स्पष्ट रूप से कहा कि दूसरे स्थानो पर जब प्रतिज्ञाए करवाई जाती है तो हम बडी तत्परता के साथ अपना हाथ ऊचा कर देते है। पर आप लोगो के सामने प्रतिज्ञा करने का हम बडा भारी महत्त्व समझते हैं। ऐसा लगता था उनमे साधु लोगो के प्रति श्रद्धा तो है। पर केवल श्रद्धा से कौन-सा काम चल सकता है ? तदनुकूल आचरण करना भी आवश्यक है।

फिर चीन के नए रुख पर चर्चा करते हुए आचार्यश्री ने प्रधान-मंत्री से पूछा—कुछ लोगो का ख्याल है कि दलाई लामा को शरण देने

के कारण चीन भारत से रुष्ट हो गया है और अब वह अपने मधुर सम्बन्धो को कटुता की ओर ले जाना चाहता है, क्या यह सही है ?

प्रधानमत्री—हो सकता है एक कारण यह भी हो। पर मुख्य रूप से चीन की विस्तारवादी मनोवृत्ति ही हमारे सम्बन्धो को कटु बना रही है। हमने चीन को राष्ट्र सघ का सदस्य बनाने का सदा समर्थन किया है। उसकी दूसरी उचित प्रवृत्तियो का भी हम समर्थन करते है। पर अपने देश की भूमि पर उसका पैर किसी भी स्थिति मे नही जमने देंगे।

आचार्यश्री—आपकी नीति सदा समझौते की नीति रही है। पर क्या सिद्धात की हत्या कर भी आप समझौते को अधिक महत्व देना चाहते हैं ?

प्रधानमत्री—नही। मैं चाहता हू जहा तक हो सके मनुष्य को समझौता करना चाहिए। पर ऐसा समझौता जो सिद्धान्त की ही हत्या कर डाले मुझे मान्य नही है। जहां तक दवाई से रोग मिट जाये तो प्रयत्न करना चाहिए। पर उससे अगर रोग के रुकने की सभावना नही हो तो फिर तो आपरेशन ही करवाना पडता है। इस प्रकार करीब २५ मिनट तक आचार्यश्री ने प्रधानमत्री से अनेक विषयो पर विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात् पुन बिडला मन्दिर लौट आए। बीच मे आचार्यश्री भारत के यशस्वी कवि श्री हरिवशराय बच्चन के निवास स्थान पर भी पधारे। श्री सुमित्रानन्दन पत भी उस समय वही उपस्थित थे। उनसे कुछ देर तक साहित्य विषयक अनेक प्रसगो पर बातचीत हुई।

उसी दिन मध्याह्न मे श्री जैनेन्द्रकुमार तथा अन्य नागरिको ने आचार्यश्री की राजस्थान यात्रा के लिए शुभकामनाए प्रगट की। तत्पश्चात् नागलोई की ओर विहार हो गया। इस प्रकार दिल्ली का यह चार दिनो का प्रवास अपने आप मे बहुत ही सफल रहा। यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि अणुव्रत-आन्दोलन को जितना गावो का समर्थन मिल रहा है उतना ही शहरी लोग भी उसका समर्थन करते है।

३०-१-६०

वहादुरगढ, रोद, कलावर होते हुए आज शाम को आचार्यश्री रोहतक पधारे। रोहतक से तीन मील पूर्व हासीवासियो का एक दल सेवा मे पहुच गया था। उनका उत्साह सराहनीय है। इसी कारण शायद इस वार के महोत्सव का अवसर उन्हे मिला। आज रात मे भी भिवानी के कुछ भाइयो ने आचार्यश्री को भिवानी पधारने की जोरदार विनती की। उन्होने कहा—लाला सतराम तथा लाला पेशीराम ने वहुत जोर देकर प्रार्थना करवाई है कि हम अभी वीमार है अत आचार्यश्री को हर हालत मे हमे दर्शन देने होंगे।

लाला पेशीराम का स्वास्थ्य तो काफी गिर गया था। अत उन्होंने अपने पुत्र मातुराम को विशेप रूप से प्रार्थना करने के लिए भेजा था। पर आचार्यश्री ४ तारीख तक हासी पहुचने के लिए वचन-वद्ध हो चुके थे। अत. वे उस प्रार्थना को स्वीकार नही कर सके। हालाकि भिवानी जाने मे १२ मील का चक्कर भी पड़ता था, आचार्यश्री उसे भी लेने के लिए प्रस्तुत थे। इसीलिए आचार्यश्री ने कहा—अपने भक्तजनो की सुधि लेने मे मुझे १२ ही नही २५ मील भी जाना पडे तो स्वीकार है। पर अपनी कही हुई वात का पालन तो मुझे करना ही चाहिए।

एक ओर जहां लाखो व्यक्ति कही हुई ही नही अपितु लिखी हुई वात से भी इन्कार होने मे सकोच अनुभव नही करते, वहां आचार्यश्री अपनी सभावित घोपणा को भी अन्यथा नही होने देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

३-२-६०

रोहतक से मदिणा, महम, मुढाल तथा गढी होते हुए आचार्यश्री हासी पधारे। हासी हरियाणे के प्रमुख शहरो मे से एक है। अत यहाँ दस हजार व्यक्तियो के वृहद् जुलूस के साथ आचार्यश्री ने नगर-प्रवेश किया। जुलूस करीब एक मील लम्बा हो गया था। क्योकि शहर के लोगो के साथ-साथ पजाब के अधिकाश तेरापथी भाई भी इस अवसर पर उपस्थित थे। एक प्रकार से यह महोत्सव केवल हासी का ही नही अपितु सारे पंजाब का ही महोत्सव था। अत. सभी लोग वडे उत्साह के साथ यहा आचार्यश्री का स्वागत करने के लिए उपस्थित हुए थे। पजाब के कुछ प्रमुख लोगों ने जब मुख्यमत्री श्री प्रतापसिह कैरो को आचार्यश्री के पजाब आगमन का परिचय दिया तो उन्होंने कहा—मैं भी उस अवसर पर हासी मे उपस्थित होकर बडा प्रसन्न होता, किन्तु मेरे सामने अनेक कठिनाइया है। अतः मैं तो वहा नही जा सकूगा पर अपने एक प्रमुख सहयोगी तथा पजाब के खाद्यमंत्री श्री मोहनलालजी शर्मा को अवश्य ही आचार्यश्री का स्वागत करने के लिए हासी जाने को कहूगा। तदनुसार श्री मोहनलाल शर्मा यहा आचार्यश्री का स्वागत करने के लिए उपस्थित हुए थे। वे स्वागत करने के लिए कुछ दूर तक आचार्यश्री के सामने भी आए थे। पर पजाबी लोगो की अक्खडता के कारण उन्हे भीड़ में काफी धक्के सहने पडे। उन्हें इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक सत का स्वागत करने के लिए लोग कितनी उमगो से उमडे आ रहे हैं।

यहा प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्ता कुमार जसवतसिह तथा चौधरी

रामशरणसिंह ने आचार्यश्री के स्वागत में अभिनन्दन पत्र समर्पित किया। खाद्यमंत्री श्रीमोहनलाल ने अभिनन्दन करते हुए कहा—आचार्य श्री के व्यक्तित्व ने आज यह सिद्ध कर दिया है कि देश को एक सच्चे उपदेशक तथा संयमी पुरुष के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। आज के इस विशाल जुलूस को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि लोग आज भी त्याग और संयम मे श्रद्धा रखते हैं। मैं अपनी ओर से तथा पजाव सरकार की ओर से पंजाब के अशेप नर-नारियों की ओर से आचार्यश्री का अभिनन्दन करता हूं। तथा यह प्रयत्न करूंगा कि अब आपके बताए हुए मार्ग पर चलकर अपना तथा देश का कल्याण करने में सहयोगी बनू। मुझे आशा है पंजाब के लोग भी आचार्य श्री के पजाव आगमन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सादा और संयत बनाएंगे।

आचार्यश्री ने अपने सार-संतृप्त भाषण में कहा—वास्तव मे भक्त वही है, जो अपने आराध्य के द्वारा आदिष्ट पथ का अनुगमन करे। मैं देखता हूं आज कल स्वागत संतों का भी होता है और नेताओं का भी। पर जिस प्रकार उन दोनो की कार्य-पद्धति मे अन्तर है उसी प्रकार उनकी स्वागत पद्धति मे भी अन्तर आना चाहिए। मैं मौखिक तथा औपचारिक स्वागत मे तथ्य नही समझता। मैं तो अपने स्वागत को तभी तथ्य-तप्त मानूगा जबकि लोग मेरे आने से नैतिक, सदाचारी तथा चरित्रनिष्ठ बनें। मैं इसीलिए देश के कोने-कोने मे घूम रहा हूं। यदि कोई मुझे अपना आराध्य मानता है तो मैं चाहूगा कि वह पहले सदाचार और सयम के मार्ग पर चलने का प्रयास करे। अन्यथा मेरा स्वागत भी ऊपरी और औपचारिक ही होगा।

मध्याह्न में ढाई बजे पजाब अणुव्रत समिति के वार्षिक अधिवेशन में आचार्यश्री ने कार्यकर्ताओ को अणुव्रत का प्रसार करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहा—आज मनुष्य दुरंगी चाल चल रहा है। वह

कहता कुछ है और करता कुछ है। इसीलिए आज इतनी दुविधाए हैं। अणुव्रत-आन्दोलन इसी दुरगी चाल को मिटाने का आन्दोलन है। आज मनुष्य के कार्यो से ऐसा नही लगता कि वह मनुष्य है। अतः उन पैशाचिक प्रवृत्तियों को परास्त करने के लिए ही अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ है। किसी भी आन्दोलन का अकन उसके कार्यकर्ताओ से किया जाता है। साधु लोग जो काम स्वय करते हैं उसी का दूसरो को उपदेश देते हैं। आज के इस सुविधा बहुल युग मे भी जबकि प्रात. की ठिठुरा देने वाली सर्दी मे लोग रजाइयो मे मुँह ढापे पडे रहते है, साधु लोग नगे पाव अपनी मजिल के लिए कूच कर चुके होते हैं। हम इतना कष्ट सहकर ही आप लोगो से कष्ट सहने के अभ्यास करने की बात कह सकते है। अन्यथा हमारी बात सुनेगा ही कौन? आप यह न समझे कि कष्ट सहकर हम कोई दु ख अनुभव करते हैं। दुःख मन के माने है। हमे कष्टो को भी आनन्द मे परिवर्तित करना है। अतः अणुव्रती भाई तथा कार्यकर्ता कष्टों से घबराए नही। अपने काम को अबाध गति से चलने दे। तभी वे कुछ काम कर सकेंगे।

४-२-६०

आज का दिन वह स्मरणीय दिन था जिसकी हासी वाले लोग बहुत दिनो से प्रतीक्षा कर रहे थे। यद्यपि हासी का यह महोत्सव एक औपचारिक महोत्सव ही था। अन्य महोत्सवो की भाति इस अवसर पर न तो अधिक साधु-साध्विया ही एकत्र हो सके थे और न आचार्यश्री भी अधिक दिनो तक ठहरने वाले थे। पर फिर भी पजाब के लिए यह वरदान ही साबित हुआ। सहस्रो नर-नारियो ने आज आचार्य भिक्षु को अपनी श्रद्धाजलिया समर्पित की। जिनके मर्यादा दिवस के रूप मे यह महोत्सव मनाया जाता है। आचार्यश्री ने महामहिम आचार्य भिक्षु का स्मरण करते हुए कहा—उन्होने हमे मर्यादा पर चलने का सकेत दिया। सचमुच मर्यादा रहित जीवन एक अभिशाप है। वह स्वय तो नष्ट होता ही है पर दूसरो को भी अपनी बाढ मे नष्ट कर देता है। मर्यादा-महोत्सव हमे उसी महापुरुष की शिक्षाओ की स्मृति कराता है। अत अपने जीवन को मर्यादित कर हम उस महापुरुष को अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करते हैं।

अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के मत्री श्री जयचन्दलालजी दफ्तरी ने मर्यादा-महोत्सव जो कि तेरापथ का एक मुख्य पर्व है, पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—आज समाज मे जो अनुशासनहीनता व्याप्त हो गई है हम सबका यह कर्तव्य है कि स्वय आत्मानुशासित होकर देश तथा समाज को नैतिक, सदाचारी तथा अनुशासित बनाने का प्रयत्न करें।

मुनिश्री धनराजजी ने इस अवसर पर आचार्य ,भिक्षु को कविता-कृति से अभिव्यक्त करते हुए लोगो को अनुशासित रहने की प्रेरणा दी।

मुनिश्री नगराजजी ने कहा मर्यादा-महोत्सव तेरापथ को आचार्य भिक्षु की सहस्रो वर्षो तक अमर रखने वाली देन है। हमारी भावी पीढ़िया इसके माध्यम से स्नेहसूत्र से सवलित होकर देश-विदेश मे अध्यात्म की लौ जगाएगी। आज भी सारे भारत मे लगभग ६५० साधु-साध्वियो के लिए तथा लाखो श्रावको के लिए यह दिन वड़े उल्लास का दिन है।

मुनिश्री नथमलजी ने कहा—व्यक्ति बुरा है या भला इसकी कसौटी वह स्वय नहीं है। कुछ आदर्श ऐसे है जो उसके मूल्य का निर्धारण करते है। वे आदर्श ही दूसरे शब्दो मे मर्यादा हैं। अत. हमे आचार्य भिक्षु द्वारा सम्मत मर्यादाओ पर चलकर अपने आपको आदर्श का अनुगन्ता वनाना है।

पजाव के उपमत्री श्री वनारसीदास ने भी इस अवसर पर लोगों को त्यागी और सयमी वनने की प्रेरणा दा।

श्री सम्पतकुमार गधैया, श्री रामचन्द्रजी जैन तथा श्रीमती सतोष ने इस पुनीत अवसर पर अपने विचार प्रकट किए।

तेरापथी महासभा के अध्यक्ष श्री नेमीचन्दजी गधैया ने आचार्यश्री भिक्षु की स्तवना करते हुए सभी लोगो को द्विशताब्दी के अवसर पर ज्यादा-से-ज्यादा सहयोग करने का आह्वान किया।

आचार्यश्री ने इस अवसर पर तीन प्रमुख घोषणाएं की—

१ मुनिश्री सुखलालजी स्वामी को घोर-तपस्वी का पदवीदान।

२. यथा अवसर पर मत्री मुनि श्रीमगनलालजी स्वामी का जीवन काव्याकृति मे ग्र थित करने का सकल्प।

३. कोई विशेष बाधा नही हो तो स्थली प्रान्त मे सबसे पहले बीकानेर के चौखले मे चातुर्मास करना।

५-२-६०

चूकि इस महोत्सव पर अधिकतर पजाबी लोग ही एकत्र हुए थे। अत' इन दिनो मे विशेष रूप से आचार्यश्री के चारो ओर उनका ही घेरा रहता था। घेरा भी ऐसा कि एक बार तो साधुओ को भी आचार्यश्री तक पहुचने का रास्ता न मिले। पंजाब और हरियाणे के सुडोल और सुगठित लोगो मे जिनकी विनती भी कडाई से होती है। इस वार के महोत्सव का दुर्लभ आकर्षण था। यद्यपि हरियाणे के लोग ज्यादा स्वच्छ रहने के अभ्यासी नही है पर आचार्यश्री के प्रति उनकी जो आस्था है वह उनके हृदय से निकलकर स्वय ही शब्दो मे छलक पडती थी। आचार्यश्री स्थान-स्थान के भाई-बहनो का परिचय प्राप्त कर रहे थे। इसी क्रम मे एक भारी भरकम भाई ने आचार्यश्री को अपना परिचय देते हुए कहा---आचार्यवर ! आपके उपदेश नि सन्देह ही हम लोगो के लिए लाभप्रद साबित हुए है। मैं तो विशेष रूप से यह कह सकता हू कि आपके शिष्यो के उपदेशो से भी मेरा बहुत कल्याण हुआ है। पहले मेरा वजन चार मन था। पर आपके अन्तेवासी मुनिश्री डूगरमलजी के उपदेश से मैंने आठ महिनो तक एकान्तर तप किया। जिसके परिणाम स्वरूप मेरा एक मन आठ सेर वजन घट गया। पहले मुझे उठने बैठने तथा चलने फिरने मे बडी तकलीफ होती थी पर अब मुझे कोई कठिनाई अनुभव नही होती। अब मैं थोडा बहुत दौड भी सकता हू। सचमुच आपके उपदेशो से आत्म-सुधार तो होता ही है, पर शरीर-सुधार भी कम नही होता। इसी प्रकार अनेक लोगो ने अपने-अपने अनुभव सुनाए और

आचार्यश्री से पजाव मे अधिकाधिक साधु-साध्वियो को भेजने का निवेदन किया।

थोड़े वर्षों पहले हम लोगो का पंजाव से वहुत ही कम सम्पर्क था। पर इन वर्षों मे आचार्यश्री तथा साधु-साध्वियो के अथक परिश्रम ने पंजाव के अनेक लोगो को सदाचार और सद्दर्शन की ओर आकृष्ट किया है। फिलौर मे कभी चातुर्मास नही हुआ था इस वार मुनिश्री डूंगरमलजी के प्रयास से वहां अच्छा उपकार हुआ। तथा अनेक व्यक्ति सुलभ बोधि वने। इसी प्रकार मुनिश्री धनराजजी ने वहा काफी उपकार किया था। आचार्यश्री साधुओ के इस विरल प्रयास से वहुत प्रसन्न नजर आ रहे थे।

●

८-२-६०

आचार्यश्री अपने सघ के साथ हिसार से राजस्थान की ओर बढ रहे थे। मध्याह्न का समय था। कडकडाती धूप और साढे आठ मील का विहार। हरियाणे की वह पद दलित धूल अब अधिक पदाघात सहना नही चाहती थी। अत पैर रखते ही उछल पडती थी एकदम सिर तक। धूलि मे छिपे हुए नन्हे-नन्हे ककर साधुओ के घायल चरणो को चीरकर अपनी पदाक्रान्तता पर रोष प्रकट कर रहे थे। पर आचार्यश्री अपने सघ के साथ अबाध गति से अविरल बढते जा रहे थे।

चार मील का रास्ता तय कर लेने के बाद आचार्यश्री ने सडक के इस छोर से उस छोर तक देखा पर कही वृक्ष का नाम तक नही था। चूकि चार मील से आगे लाया हुआ पानी हम पी नही सकते। अतः आचार्यश्री सोचने लगे—पानी कहा पीया जाए ? इतने मे पीछे से एक चमचमाती हुई कार आ गई। कार मे से कुछ दर्शनार्थी (प्रभुदयालजी आदि) उतरे और आचार्यश्री उसी कार की छाया मे जमीन पर ही कम्बल बिछा कर बैठ गए। मकान तो खैर जगल मे होता ही कहा से, वृक्ष भी नही थे। आधी धूप और आधी छाया मे बैठे हुए आचार्यश्री मुस्करा रहे थे और पानी पी रहे थे। जो इतनी थोड़ी-सी सामग्री मे भी हस सकता है उसकी हसी को आखिर कौन रोक सकता है ? श्रान्ति और क्लान्ति के स्थान पर वहा शाति और सौम्यता उनके चेहरे पर खेल रही थी। यह उस साधक की साधना का ही प्रभाव था कि कार मे चलने वाला व्यक्ति अपनी ही कार की छाया मे आश्रय पाए हुए सत के

चरणो मे बैठकर आनन्द के अथाह अम्बुनिधि मे डूबता उतराता था।

आचार्यश्री जहा भी जाते है वहा स्वय ही एक भीड इकट्ठी हो जाती है। यात्री लोग तो साथ रहते ही है पर स्थानीय व्यक्तियो की उत्कठा भी कम नही रहती। स्वत. ही एक सभा जुड गई। मुनिश्री नेमीचन्दजी ने ग्रामवासियो को अणुव्रत का सदेश दिया। तदनन्तर कुछ क्षणो के लिए स्वय आचार्यश्री भी सभा मे पधारे। बातचीत के बीच आचार्यश्री ने चौ० पृथ्वीसिह सरपच ग्राम पचायत से पूछा—क्यो सरपच साहब! आपने सतो का स्वागत किया? चौधरी कुछ हिचकिचाया और सकोच-सस्पष्ट शब्दो मे बोला—हां, मै कुछ दूर स्वागत करने के लिए सामने गया था। रुपये पैसे और भूमि तो आप लेते नही तब उससे बढकर मैं और कर ही क्या सकता था।

आचार्यश्री—आप अपनी सबसे प्यारी चीज भेंट कर सकते थे। चौधरी को असमजस मे पडा देखकर आचार्यश्री कहने लगे—सतो का स्वागत तो अपने जीवन को उन्नत बनाने से ही हो सकता है। जीवन मे यदि कोई बुराई या व्यसन हो तो उसे छोड देना ही सतो का सच्चा स्वागत है। क्या आपके यहा मद्य का प्रचलन है?

चौधरी—हा, यहा मद्य खूब चलता है और मैं स्वय भी मद्य पीता हू।

आचार्यश्री—क्या उसे छोड सकते हो?

चौधरी—सभव नही है। कहना सहज होता है पर जीवन भर प्रतिज्ञा का पालन करना दुष्कर होता है। हम लोग नेताओ के सामने बहुधा बुराइया छोडने के सकल्प किया करते हैं, हाथ उठा उठाकर प्रतिज्ञाए भी लेते है पर उनका पालन नही करते। क्योकि वहा प्रवाह होता है जीवन पर प्रभाव नही।

आचार्यश्री इस प्रकार २० मिनट तक सरपच से उलझे रहे। बार-बार सरपच के हृदय मे मद्य-मुक्ति की हिलोरें उठती पर दूसरे ही क्षण इस महान् उतरदायित्व से वह काप जाता। एक प्रबुद्ध व्यक्तित्व उसके सामने खडा था। जो उसे बार-बार व्यसन-विरक्ति का सदेश दे रहा था। आखिर वह लुभावना व्यक्तित्व काम कर गया और बुराई पर भलाई की जीत हो गई। एक अव्यक्त विचार तरग उसके अन्तर को छू गई और सरपच ने हाथ जोडकर आजीवन शराब नही पीने की प्रतिज्ञा कर ली। उपस्थित जन समुदाय ने नौ वर्षो से चले आने वाले अपने सर्व प्रिय सरपच का न केवल तालियो की गडगडाहट से ही स्वागत किया अपितु एक के बाद एक इस प्रकार दसो व्यक्तियो ने खडे होकर उसका अनुगमन भी किया। एक साथ एक विचार क्रान्ति सब मे अभि-व्याप्त हो गई। भले ही कुछ लोग साधुओ की साधना को निरर्थक समझते हो पर वे सत्य ही समझ रहे हैं, ऐसा नही कहा जा सकता।

९-२-६०

आचार्यश्री वृक्षो से आच्छादित जी० टी० रोड छोडकर जहा काटों और ककरो से परिपूर्ण राजगढ रोड पर चल रहे थे, वहा बडे-बडे आराम-देह महलो और मदिरो को छोडकर किसानो की छोटी तग और अर्ध आच्छन्न झोपडियो मे भी ठहर रहे थे। जैसा आनन्द उन्होने राष्ट्रपति भवन मे राष्ट्रपतिजी से मिलकर किया था वही आनन्द वे उन झोपडियो मे गरीब किसानो से मिलकर अनुभव कर रहे थे। सतजन अपनी छोटी-मोटी चादरो से शामियाना बना कर सूर्य की प्रचण्ड रश्मियो से अपना बचाव कर रहे थे। वही भोजन और वही अध्ययन। अलग-अलग कमरे वहा कहा से आते। यात्री लोगो पर भी उस क्रिया की प्रतिक्रिया हुए बिना नही रही। वे भी बिना किसी छाया और ओट के सडक के किनारे पर अपना घर बसाकर आनन्द मना रहे थे। वातानुकूलित भवनो मे रहने वाले व आरामदेह कारो मे चलने वाले व्यक्ति भी धूप और धूल मे बिना किसी सकोच के आनन्द मना रहे थे। क्या यह पदार्थ बहुल भौतिकवाद पर परित्याग-पुष्ट अध्यात्मवाद की विजय का एक शुभ-दर्शन नही था? ऐसा लगता था मानो विज्ञान पर दर्शन के विजय-चिह्न अकित करने के लिए कोई देवदूत ही इस धरा-धाम पर उतर आए हो। आचार्यश्री इतनी तपस्या कर रहे थे तभी तो लोगो मे खुल कर कष्ट सहने की प्रवृत्ति पनप रही थी। सच है पानी जितने ऊचे स्थान से आता है वह उतनी ही ऊचाई तक नलो द्वारा पहुचाया जा सकता है।

लोगो के आग्रह को नहीं टाल सकने के कारण स्वय आचार्यश्री द्वार-द्वार पर भिक्षा के लिए गए। लोगो मे हर्ष का अपार पारावार उमड़

पडा। लेकिन उससे भी बढकर जो एक सवेदन मन को स्पृष्ट कर रहा था—वह यह था कि भिक्षुक के दान पाने की अपेक्षा दानी दान देने के लिए अधिक आतुर थे। जहा प्राप्ति की आकाक्षा रहती है वहा हाथ स्वय ही रुक जाता है। इसीलिए तो कहा गया है—त्याग ही सबसे बडी प्राप्ति है। हमने अनेक बार देखा है सदाव्रतो मे ढोगी साधु बार-बार पक्ति मे बैठकर दान पाना चाहते हैं। इसलिए उनकी भयकर भर्त्सना होती है। सच्चे साधु कुछ लेना नही चाहते तो उनकी मनुहारे होती हैं। तेरापथ समाज की दान-पद्धति सचमुच बडी बेजोड है। वह इसलिए नही कि हम तेरापथी हैं पर इसलिए कि उसके कारण दाता दान देकर अपने को उपकृत समझता है।

१०-२-६०

झुपा मे एक मुस्लिम भाई आचार्यश्री के दर्शनार्थ आया। कुछ बातचीत भी उसने की। तृप्ति भी उसे हुई। जाते जाते बोला—आचार्यजी! यदि आपको एतराज न हो तो मैं चरण स्पर्श करना चाहता हू। मैं मुसलमान हू अत. मेरे स्पर्श करने से आपको स्नान तो नही करना पड़ेगा? आचार्यश्री थोडे से मुस्काए और बोले—मनुष्य की महत्ता उसकी मनुष्यता मे है। वहां जाति, वर्ण और रग का कोई प्रश्न नही उठता। घटना साधारण थी पर अपने पर वह जो भार युगो से ढोकर ला रही थी उसने उसे असाधारण बना दिया।

वहा से राजगढ चौदह मील दूर था। मार्ग मे आठ नौ मील पर कोई गांव नही था। केवल रेलवे लाइन पर काम करने वाले हरिजनो के पाच-छ. छोटे-छोटे क्वार्टर थे। आचार्यश्री ने तो वहा रहने का निर्णय कर लिया, पर हरिजन भाई जरा सकोच कर रहे थे। वे सोच रहे थे—एक महान् सत हमारे छोटे-छोटे घरो में कैसे ठहरेगा? पर जिसने प्राणी मात्र मे समत्व बुद्धि की घोषणा की है वह इन छोटे-छोटे जातीय झगड़ों में कैसे उलझ सकता था? आखिर आचार्यश्री वही ठहरे। प्रबन्धको ने जी जान से सेवा करने का प्रयास किया। वे सारे अनुकूल साधन जुटा सके या नही अथवा जुटा सकते थे या नही यह प्रश्न इतने महत्व का नही था जितने महत्व का उनका भक्ति भरा व्यवहार था।

●

११-२-६०

आज आचार्यश्री राजगढ़ मे प्रवेश कर रहे थे। राजगढ़ हमारा चिर-परिचित गाव था। अत इस छोर से उस छोर तक न केवल सड़कें ही तोरण द्वारो और झडियो से आकीर्ण थी, अपितु हजारो-हजारो नागरिको से भी वे सकुल हो रही थी। श्रद्धालुओ का हृदय उछल-उछल कर हाथो मे आ रहा था। आचार्यश्री इससे पूर्व भी अनेक बार यहा आए हैं। परन्तु आज का हृदयोल्लास तो अपूर्व ही था। पहले आचार्यश्री तेरापथ के एक आचार्य के रूप मे देखे जाते थे अब वे अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप मे देखे जाते हैं। जनता बाह्य आकार को बहुत देखती है अन्तर को देखने का अभ्यास अपेक्षाकृत कम प्रौढ होता है। यदि लोग आचार्यश्री के हृदय को अच्छी तरह से पढ पाते तो शायद उनके अभिनन्दन का क्षेत्र और भी अधिक व्यापक हो जाता।

राजगढ़ के स्वागत समारोह की तैयारी भी आचार्यश्री के अनुरूप ही थी। सबसे पहले जब कुछ हरिजनो और नाइयो ने परिषद् के बीच खड़े होकर मद्य पान का त्याग किया तो वातावरण मे एक अभिनव लहर सी दौड़ गई। आचार्यश्री का हृदय भी हर्ष से उत्फुल्ल हो उठा।

नगरपालिका के सदस्यो ने लम्बे समय से चले आते आपसी सघर्ष को मिटा देने का सकल्प कर आचार्यश्री का स्वागत किया।

यदि सभी सत लोग सदा ऐसा ही करते चले तो क्या उनके प्रति जनता के मन मे श्रद्धा का उद्रेक नही हो सकता ?

●

१२-२-६०

आज का मुकाम शादुलपुर था। आचार्यश्री ने यहा सक्षिप्त-सा प्रवचन दिया। इतने मे एक वृद्ध व्यक्ति खडा हुआ और मद्यपान तथा धूम्रपान त्यागने की प्रतिज्ञा करने लगा। सारी सभा की आखें उस पर केन्द्रित हो गई और एक आश्चर्य-मिश्रित हर्ष-ध्वनि सारे वातावरण मे व्याप्त हो गई। लोग बातें करने लगे वह व्यक्ति जो प्रतिदिन दो बोतलें शराब पीता है, क्या सचमुच ही शराब पीना छोड देगा ? अनेक आशकाए मन मे खडी हो रही थी। पर क्या आशकाओ के आधार पर हम व्यक्ति का उचित अकन कर सकते है ? शायद नही। आशका के लिए भी स्थान है पर उसका क्षेत्र भिन्न है। यदि कोई व्यक्ति आत्म-प्रेरित होकर ऊर्ध्वमुख बनना चाहे और उसका अविश्वास ही किया जाये यह आवश्यक नही है। आचार्यश्री विश्वास लेते हैं और विश्वास ही देते है। इसीलिए उन्हे सब जगह सफलता के दर्शन होते हैं। मुनिश्री नथमलजी ने ठीक ही लिखा है—"विश्वास किया जाता है, कराया नही जाता। जो कराया जाता है वह विश्वास नही होता।" उपस्थित जनता ने भी इस बात पर इसलिए विश्वास कर लिया कि वह सब आचार्यश्री के सामने हो रहा था। एक सत-पुरुष के सामने की जाने वाली प्रतिज्ञा के बारे मे सदेह बहुत ही कम होता है। उस व्यक्ति पर भी इतनी परिषद् के बीच प्रतिज्ञा करने से एक बडी भारी जिम्मेवारी आ गई। अब उसके लिए कही खुले मे मद्यपान या धूम्रपान इसलिए असभव हो गया कि उसके परित्याग की साक्षी देने वालो की सख्या इतनी बडी थी कि उसका तिरस्कार नही किया जा सकता।

●

१३-२-६०

मध्याह्न की चिलचिलाती धूप मे आचार्यश्री चल रहे थे कि उन्हे एक सवाद मिला "कुछ साध्विया दर्शन करना चाहती है।" आचार्यश्री ने उस सवाद को इसलिए अधिक महत्व नही दिया कि साध्विया दर्शन तो कल कर ही चुकी हैं अत. आज क्यो व्यर्थ ही समय विताया जाए। पर दूसरे ही क्षण उन्हे यह पता चला कि उनके पास पानी नही है और वे पानी के लिए आ रही है तो तत्क्षण आचार्यश्री ने धूप मे ही अपने पैर रोक लिए। साध्विया आईं दर्शन किये और कृतकृत्य हो गईं। आचार्यश्री ने वात्सल्य-पूरित शब्दो मे कहा—क्यो पानी चाहिए ? साध्वियो ने इस गभीर घोष मे जलधर के दर्शन किए और निवेदन किया—हमें पानी नही मिला है अतः कुछ पानी की जरूरत है। आचार्यश्री के पास भी पानी की अल्पता तो होगी ही पर हम जल-याचना के लिए विवश हैं।

आचार्यश्री ने उसी क्षण साधुओ से कहा—सभी साधु थोडा-थोडा जल साध्वियो के पात्र मे डाल दो। साध्वियो ने अपना पात्र आगे कर दिया और साधुओ ने अपने-अपने पात्र मे से पानी डालकर उस पात्र को भर दिया। याचना इसलिए हुई कि उसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। और उसकी पूर्ति की सभावना ही नही निश्चित विश्वास था। दान इसलिए हुआ कि उसकी अत्यन्त आवश्यकता थी और प्रमोद-प्राप्ति की सभावना ही नही विश्वास था। यदि यही आवश्यकता और विश्वास सारे जग मे आच्छन्न हो जाए तो क्या ससार से ऐसा सब कुछ दूर नही हो जाएगा जो दु ख शब्द से अभिहित किया जाता है।

आचार्यश्री और साधु लोग पैदल चलते हैं इस विचार ने कुछ श्रावक लोगो को भी पैदल कर दिया। हासी के कुछ कार्यकर्ता इसीलिए मोटर होते हुए भी पैदल चलने लगे। पर गहरी बालू ने उन्हे अधिक दूर नही चलने दिया। थककर बैठ गए। मोटर की प्रतीक्षा करने लगे। मोटर आई तो उसमे बैठकर आगे निकल गए। बीच मे आचार्यश्री मिले तो दर्शन किए। आचार्यश्री ने कहा—बस ! बस मिल गई इसलिए पैर फूल गए।

कार्यकर्ता—नही हमारा बालू मे चलने का अभ्यास नही है। इसलिए थक गए, मोटर मे आ गए।

आचार्यश्री ने कहा—यही तो साधु जीवन और गृहस्थ जीवन मे अन्तर है। गृहस्थ यदि चाहे तो वाहन मे बैठ सकते है और चाहे तो पैदल चल सकते हैं। साधुओ के लिए तो एक ही विकल्प है। उन्हे तो हर हालत मे पैदल ही चलना पडता है।

१४-२-६०

आचार्यश्री अपनी लम्बी पद-यात्राओ मे जहा सैकडो ग्रामो मे रुक-रुक कर नैतिकता की शख-ध्वनि सुनाते है वहा समयाभाव के कारण हजारो गावो मे रुक भी नही सकते। आज भी देवीपुरा गाव से गुजरते हुए आचार्यश्री को वहा के निवासियो ने घेर लिया। सभी ने विनियावनत होकर वन्दन किया और खडे हो गए। सरपच बच्छराज आगे आया और कहने लगा—क्या आज आप यहा नही रुक सकते ?

आचार्यश्री—हमे अभी आगे जाना है। वहा का प्रोग्राम बन चुका है।

सरपच—क्या थोडी देर के लिए भी आप नही रुक सकते ?

मृदुता मनुष्य को विवश कर देती है। आचार्यश्री को भी पिघलना पड़ा और कुछ देर वहा उपदेश करना पडा। उपदेश के बाद सरपच पूछने लगा—क्या नेहरूजी नास्तिक है ?

आचार्यश्री—इससे पहले कि मैं आपके प्रश्न का उत्तर दू, आप ही मेरे कुछ प्रश्नो का उत्तर दे दीजिए। क्या नेहरूजी सत्य और अहिंसा मे विश्वास नही करते ? क्षमा और मैत्री क्या उन्हे अप्रिय है ? क्या वे जीवन के छोटे-से-छोटे व्यवहार से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक समता और शाति का समर्थन नही करते ?

सरपच—यह तो है, पर वे किसी धर्म विशेष—मदिर, मस्जिद, गिर्जा, गुरुद्वारा आदि के उपासक तो नही है।

आचार्यश्री—धर्म, उपासना से अधिक आचरण का विषय है। वह किसी स्थान-विशेष, दिन-विशेष या चर्या-विशेष मे नही बधता। वह तो

जीवन का अभिन्न सहचर है उन्मुक्त और अनिवार्य ।

सरपच—पर वे हमे किधर ले जाना चाहते है ? साम्यवाद की ओर या समाजवाद की ओर ?

आचार्यश्री—मेरे अपने व्यक्तिगत विचार से मुझे ऐसा नही लगता कि वे हिंसा के समर्थक हो ? वे अहिंसा और मैत्री के माध्यम से देश को समता की ओर ले जाना चाहते है । समता केवल साम्यवाद से ही आ सकती है ऐसा उनका विचार मुझे नही लगता ।

सरपच—क्या आपने चीन के विषय मे नेहरूजी से बातचीत की थी । आज चीन भारत की सीमा का अतिक्रमण कर रहा है यह क्या हमारी तिब्बत सम्बन्धी नीति का परिणाम नही है ?

आचार्यश्री—हा बातचीत के प्रसग मे उन्होने मुझे कहा था—सभव है हमारी तिब्बत नीति से चीन कुछ रुष्ट हो गया हो । पर इसका मूल कारण तो उसकी साम्राज्य-विस्तार की नीति ही है । वर्तमान घटनाओ से उसकी विस्तार भावना को वेग मिल सकता है । पर हम उस ओर से असावधान नही हैं ।

आचार्यश्री ने उन्हे घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी के बारे मे बताया तो वे कहने लगे—हा, इस सम्बन्ध मे मुझे कुछ मालूम तो है । पर एक प्रश्न मेरे मन में बार-बार उठता रहता है । क्या आपके अनुशासित संघ मे भी इस प्रकार के अवैध अनशन हो सकते है ?

उनका ख्याल था कि मुनिश्री अपनी किसी माग को लेकर अनशन कर रहे हैं । पर आचार्यश्री ने उन्हे बताया कि यह कोई सत्याग्रह नही है अपितु आत्म-साधना की दृष्टि से वे ऐसा कर रहे है । हमारे और उनके पूज्य आचार्यश्री कालूगणि ने अपने जीवन मे साठ बसन्त देखे थे । जब वे स्वर्गगामी हुए तो उन्होंने भी सकल्प कर लिया था कि मुझे भी अपने गुरु से अधिक नही जीना है । इसीलिए उन्होने तपस्या

के द्वारा अपने शरीर को कृश कर लिया था और अब अनशन कर रहे हैं।

कुछ लोगो का ख्याल है कि अनशन एक प्रकार की आत्महत्या ही है। पर देश सुरक्षा के लिए किये जाने वाले आवश्यक बलिदान यदि आत्महत्या नही है तो आत्मशांति के लिए किया जाने वाला अनशन आत्म-हत्या कैसे हो सकता है ?

आजकल लोगो ने अनशन शब्द को बहुत सस्ता कर दिया है। छोटी-छोटी बातो को लेकर आमरण अनशन कर देते हैं। इसीलिए लोगो को उसमे आत्म-शुद्धि की सुगन्ध नही आती। वर्तमान युग मे अन-शन का अचूक शस्त्र के रूप मे प्रयोग करने वाले महात्मा गाधी भी शायद आज उसका स्वरूप देखकर कुछ चिन्तित ही होगे।

इन सबके अतिरिक्त उन्होने गणतन्त्र भूदान तथा भारत की नैतिक स्थिति के बारे मे भी अनेक प्रश्न पूछे। इस छोटे से गाव मे इन महत्त्व-पूर्ण प्रश्नो पर विचार करने वालो का मिल जाना देश के प्रजातान्त्रिक ढाचे के विकास का ही परिणाम है। साथ ही सतों से प्रश्न पूछने के पीछे उनके ये ही विचार काम करते है कि सत हमे सही स्थिति ही बतलाएगे। हमे भी इन सब प्रश्नोत्तरो को सुनकर अच्छा आनन्द आया।

१५-२-६०

साधुओं के एक हाथ मे विदाई है और दूसरे हाथ मे स्वागत है। स्वागत शब्द आज एक समारोह के अर्थ मे रूढ हो गया है। पर साधुओ का तो यदि वे सही अर्थ मे साधु है, तो पग-पग पर स्वागत ही है। स्वागत माने मन मे रही श्रद्धा की अभिव्यक्ति। साधुओ के प्रति जनता मे स्वाभाविक श्रद्धा होती है वह स्वागत ही तो है। आचार्यश्री इस रूढिगत स्वागत को अधिक महत्त्व नही देते। पर वे श्रद्धालु लोगो की भावना को तोडना भी नही चाहते। इसीलिए आज भी स्वागत का कार्यक्रम रखा गया था। अनेक सस्थाओ की सक्रियता का एक अग यह भी है कि किसी विशेष व्यक्तित्व के सम्पर्क से वे अपनी गति-विधि को केन्द्रित कर सकें। इसीलिए आज अनेक सस्थाओ ने आचार्यश्री का स्वागत किया। मुनिश्री चम्पालालजी तथा मुनिश्री चन्दनमलजी ने भी अपनी सुमधुर सगीत ध्वनि से वातावरण को एक बार झकृत कर दिया। नगरपालिका के अध्यक्ष श्री दुर्गादत्तजी ने अभिनन्दन-पत्र पढा।

दूसरे प्रहर मे स्वागत हुआ था तो तीसरे मे विदाई हो गई। जब तक आचार्यश्री नही पधारे थे तब तक प्रतीक्षा थी। प्रतीक्षा ने आगमन को अवसर दिया, आगमन ने विदाई को अवसर दिया और विदाई ने फिर प्रतीक्षा को अवसर दे दिया। चुरू एक बहुत बडा क्षेत्र है। यहा अधिक दिनो तक रहना आवश्यक था। पर उधर तपस्वी मुनि की स्थिति ने आचार्यश्री के पैरो मे गति भर रखी थी। इसीलिए आचार्यश्री यहा अधिक नही

ठहर सके। चुरू से प्रस्थान करने से पहले आचार्यश्री फाल्गुन कृष्णा पचमी तक सरदारशहर पहुंच जाना चाहते थे। पर चूकि तपस्वीजी जीवन के अतिम किनारे तक आ पहुचे थे। अतः आचार्यश्री को अपनी गति मे और भी वेग भरना पडा। फलत साय ३ मील के विहार के स्थान पर नौ मील का विहार करना पडा।

●

१६-२-६०

सरदारशहर से थोडी-थोडी देर मे सवाद आ रहे थे कि तपस्वीजी का जीवन-दीप अब बुझने ही वाला है। पर आचार्यश्री को विश्वास था कि उनके जाने से पहले तपस्वी चिर-निद्रा मे नही सोएगे। इसीलिए आज उदासर से विहार करते ही आचार्यश्री ने मित्र-परिपद् के स्वयसेवक से पूछा—घडी मे कितने वजे हैं। उसने कहा—सात वजकर इक्कीस मिनट हुए है।

आचार्यश्री—तव तो हमारा काम भी इक्कीस ही होगा।

पचास कदम आगे चले होगे कि सामने से एक साड दाईं ओर से आता हुआ मिला। आचार्यश्री ने कहा—जाते ही तपस्वी का काम सिद्ध हो जाएगा ऐसा लगता है।

आचार्यश्री फूलासर से कुछ ही आगे वढे थे कि भवरलालजी दूगड़ तथा सम्पतमलजी गधैया सामने से आते दिखाई दिये। उनके निकट आते ही आचार्यश्री ने पूछा—तपस्वी की क्या स्थिति है? उन्होने निवेदन किया—उनकी स्थिति वडी नाजुक है। अच्छा हो आप अभी सीधे सरदारशहर ही पधार जाए। सरदारशहर उदासर से पन्द्रह मील पडता था। रास्ता विलकुल टीवो का था। वालू गर्म हो चुकी थी। इसीलिए आचार्यश्री कुछ देर वीच मे ठहर कर मध्याह्न मे २ वजे वहा पहुचना चाहते थे। पर उनका यह सवाद सुन कर उन्हे वहुत जल्दी अपने निर्णय मे परिवर्तन करना पडा। परिणामतः वीच मे केवल आधे घण्टे मे कुछ हल्का-सा नाश्ता कर आचार्यश्री तत्क्षण सरदारशहर की ओर चल पडे। साथ मे दो-चार साधु थे। वाकी साधु

धीरे-धीरे श्रा रहे थे और आचार्यश्री चार मील प्रति घण्टा की गति से सरदारशहर की ओर बढ रहे थे।

इधर क्षरण-क्षरण मे तपस्वी मुनि की स्थिति चिंताजनक हो रही थी। प्रतीक्षा मे मिनट भी घण्टो जैसी लगने लग जाती है। बारह बज चुके थे। तपस्वी की नाडी ने चलने से इन्कार कर दिया था। सबके मन मे सशय स्थान पाने लगा कि वे अतिम सास मे श्राचार्यश्री को अपनी आखो की पुतली मे प्रतिबिम्बित कर सकेगे या नही ? पर साढे बारह बजे तो श्राचार्यश्री इस भयकर गर्मी मे पसीने से लथपथ होकर तपस्वी के सामने पहुच ही गये। आते ही आचार्यश्री ने कहा—लो घोर तपस्वी ! हम तुम्हारे लिए श्रा गये है। एक बार आख तो खोलो। यद्यपि तपस्वीकी बाह्य चेतना लुप्त हो चुकी थी पर अन्तश्चेतना उनमे थी, यह स्पष्ट था। उन्होने एक-दो बार आख खोली और फिर सदा के लिए बद कर ली। उनके प्राण-पखेरू मानो आचार्यश्री के दर्शन के लिए ही रुके हुए थे। आचार्यश्री के आते ही वे अज्ञात स्थान की ओर उड गये। अतिम समय मे उनके मुख-मण्डल पर शाति खेल रही थी। वह व्यक्ति जिसने अपने जीवन मे अनेक लोगो को तपस्या की ओर प्रेरित किया था, आज एक वीर सैनिक की भाति जीवन और मृत्यु के रण मे सदा के लिए सो गया।

रात्रि मे प्रार्थना के समय आचार्यश्री ने उनकी सफलता को इगित कर एक दोहा कह उन्हे श्रद्धाजलि समर्पित की—

भद्रोतर तप ऊपरे, अनशन दिन इकवीस।
घोर तपस्वी सुख मुनि, सार्थक विश्वावीस॥

१७-२-६०

घोर तपस्वी का शरीर ज्यो-का-त्यो पडा था। पर चैतन्य उसमे से निकल चुका था। एक नन्ही-सी अदृश्य चेतना कितने वडे पुद्गल पिंड को अपने पीछे खीचती रहती है, इसका यह स्पष्ट प्रमाण था। पर यह तो जीवन की अनिवार्य शर्त है। अत आज प्रातःकाल एक विशाल जन-समूह के वीच उनकी अत्येष्टि कर दी गई। इससे पहले श्रावक लोग प्रायः मृत साधुओ के पीछे रुपयो की उछाल किया करते थे। पर इस अवसर पर वह नही की गई। आचार्यश्री ने भी इसे उपयुक्त ही वताया। कुछ लोगो को यह नवीन परम्परा अजीव-सी अवश्य लगी पर सत्य को आखिर अस्वीकार कैसे किया जा सकता था? सहस्रो नेत्र उस तप पूत को अग्नि की लपटो मे झुलसते हुए देखकर अश्रु-प्रवाह को नही रोक सके। पर जिन्होने मृत्यु को महोत्सव मान कर उसका स्वागत किया था उसके लिए आसू वहाना क्या ठीक है? कोई यदि अनशन नही भी कर सके तो भी उसे उनसे प्रेरणा तो लेनी ही चाहिए कि सहज रूप से आने वाली मृत्यु के क्षणो मे वह अपने धैर्य को न खोये। वैसे तो जीवन के आदि क्षण से ही हम प्रतिक्षण मृत्यु की ओर अग्रसर होते रहते है। वहुधा दीपक जलकर राह दिखाता है, पर कभी-कभी वह वुझ कर ऐसी राह दिखा देता है कि भटकते हुओ को सहज ही मार्ग मिल जाता है। घोर तपस्वी ने अपने जीवन से अनेको को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया था और अव वे निर्वृत्त होकर सहस्रो लोगो के लिए आलोकदीप का काम कर रहे थे। उस महान् आत्मा को कौन अपनी श्रद्धाजलि नही समर्पित करना चाहेगा?

१८-२-६०

पूर्व निश्चय के अनुसार आज नौ बजे आचार्यश्री प्रवचन पडाल मे पधारे। आज का विषय था—मत्री मुनि की जीवन-झाकी। सभी साधु-साध्वी एक अजीव उत्कण्ठा लिए बैठे थे। सबसे पहले मुनि श्रीसोहनलालजी ने मत्री-मुनि को श्रद्धाजली समर्पित करते हुए उनकी जीवन-गाथा को कुछ सोरठो और सरस गीतिकाओ मे प्रस्तुत किया। मुनिश्री मत्री मुनि के नाम मात्र से गद्‌गद्‌ हो रहे थे। आचार्यश्री ने मत्री मुनि की स्मृति को सजीव करते हुए कहा—मैंने जब मत्री के स्वर्गवास का सवाद सुना तो मेरा दिल इतना भारी हो गया जितना इन ३४ वर्षों मे कभी नही हुआ था। उन्होने गत वर्षो मे मरणान्त वेदनाए सही थी पर घोर तपस्वी स्व० मुनिश्री सुखलालजी तथा मुनिश्री सोहनलालजी (चूरू) ने उनकी जो परिचर्या की है वह सचमुच तेरापथ सघ के लिए अपनी गौरव-परम्परा को सुरक्षित रखने की एक बात थी। उनके परिचर्या मे रहने से मुझे कभी क्षण भर के लिए भी यह चिंता नही हुई कि मत्री मुनि की परिचर्या ठीक ढग से हो रही है या नही? इन दोनो ने उन्हे जो शारीरिक तथा मानसिक समाधि दी है, उसे मैं कभी नही भूल सकता।

मुनिश्री सोहनलालजी ने अपने सौभाग्य की श्लाघा करते हुए कहा—गुरुदेव! सचमुच मैं कितना सौभागी हू। आचार्यवर ने अपने शतश साधुओ मे से मुझे ही उनकी सेवा का शुभ अवसर प्रदान किया। आपकी यह कृपा ही उसका निमित्त था। उसके आधार पर ही मैंने यत्किंचित सेवा की है। यहा एक बात कहनी अनुचित न होगी कि

अन्य साधुओ की सेवा कर सफलता पाना सहज है पर मत्री मुनि की सेवा कर सफलता पाना जरा कठिन था। कारण यह था कि मत्री मुनि अपनी शारीरिक आवश्यकताओ के बारे मे कभी किसी से कुछ नही कहते। हमे ही उनकी आवश्यकताओ का ध्यान रखना पडता था।

आचार्यश्री ने अपने प्रारब्ध प्रवचन को आगे बढाते हुए कहा—यद्यपि सेवा का कोई पारितोपिक नही होता। फिर भी सघ मे इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित रखने के लिए कुछ पारितोपिक भी देना चाहता हू। घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी ने तो अपना पारितोपिक अपने आप ले ही लिया। मुनि सोहनलालजी यदि आचार्यो के पास रहेगे तो सहाय्य-पति रहेगे और अन्यत्र रहेगे तो सिंघाडपति रहेगे तथा तीन वर्षो तक अग्रगामी पर लगने वाला कर उन्हे नही चुकाना पडेगा। इसके साथ-साथ मुनि सोहनलाल (लूणकरणसर), मुनि नगराज, मुनि देवराज को भी तीन वर्ष की चाकरी माफ तथा पाच-पाच हजार गाथाए पारितोपिक।

आचार्यश्री मत्री मुनि के सस्मरण सुनाने मे इतने लीन हो गए कि घडी ने पूर्ण मध्यान्ह का सकेत कर दिया, इसका पता ही नही चला। श्रोता लोग भी उस स्मृति-सागर मे अपने पर पडने वाले समय सलिल के बोझ को जैसे भूल ही गए। उन्हे पता ही न चला कि बारह बज गए।

आचार्यश्री के ससार पक्षीय बडे भाई मुनिश्री चम्पालालजी ने भी इस प्रसग पर मत्री मुनि से सबन्धित अपने कुछ अनुभव सुनाए।

सरदारशहर के लिए यह पहला ही अवसर था।

२२-२-६०

दोपहर के साढे वारह वजे हैं। अभी अभी दस मिनट पहले ही हम दस मील चलकर दुलरासर पहुचे है। फाल्गुन का महीना और राजस्थान का यह वालुमय प्रदेश। ऊचे ऊचे टीबो पर उतरने और चढने में कितना कष्ट होता है, यह जानने वाले ही जान सकते है। ऊपर से सूर्य तो तपता ही है, पर उसके प्रचण्ड-ताप को देखकर धरती भी तप्त हो जाती है। धरती यहा की नवनीत की भाति अति सुकोमल है। पैर रखते ही मानो फूलो की शैया पर पडता है। पर उसकी भी आखिर एक सीमा होती है। सीमा से अतिक्रान्त होकर फूलो पर चलना भी असुहाना हो जाता है। जव पैर वालु पर पडते है तो २ इच अन्दर गड़ जाते है। अतिशय मृदुता भी आखिर क्लेशकारक वन जाती है। वार-वार पैरो के निकालने मे ही इतना समय और शक्ति लग जाती है जितनी अगला कदम रखने मे लगती है।

ऐसी स्थिति मे भी आचार्यश्री एक साथ दस मील चलकर आए थे। उन्हे इतने-इतने लम्वे विहार करने की क्या आवश्यकता थी ? क्या वे किन्ही मठाधीशो की भाति अपना मठ वनाकर आराम से नही रह सकते ? क्या वे भी अन्य जैन मुनियो की भाति नवकल्पी विहार नही कर सकते ? पर वहुजन कल्याण की भावना का सदेश लेकर चलने वाला व्यक्ति मठाधीश और नवकल्पिक ही कैसे रह सकता है ? उसे तो सारे ससार को ही अपना मठ वनाना होगा और सहस्रकल्पी की सज्ञा को ओढकर ही चलना होगा।

एक समय था जब मत्री मुनि आचार्यश्री के साथ रहते थे तब सरदारशहर से यहा तक आने मे तीन चार दिन लग जाते थे। पर अब मत्री मुनि तो रहे नही। दूसरे वृद्ध सत धीरे-धीरे आ रहे हैं। आचार्यश्री जब इतने तेज चलते है तो वे लोग उनका सहगामित्व कैसे निभा सकते है? इतने मे ही बस नही हो गया है अभी तक शाम को साढ़े तीन मील फिर चलना है।

कुछ तो सरदारशहर से प्रस्थान करने मे विलम्ब हो गया था और कुछ विहार लम्बा था। अत यहा पहुचते-पहुचते काफी थकावट आ गई। सभी लोग तृष्णाकुल हो गए। यदि मनुष्य अकेला चले तो वह समय से चल सकता है और तेज भी चल सकता है। पर जो समाज को साथ लेकर चलता है उसे चलने मे भी विलम्ब हो जाता है और धीरे-धीरे भी चलना पडता है। आचार्यश्री अपने साथ एक विशाल जन-समूह को लेकर चलते है। अतः उन्हे विदा देने मे ही बहुत समय लग गया। जब सरदारशहर से विहार किया था तो इतना जन-समूह साथ था कि रोके नही रुक सकता था। उन्हे विदा देने मे समय तो लगता ही।

आचार्यश्री स्वय खूब चलते है और दूसरो को भी खूब चलाते है। चलाते क्या है दूसरे स्वय उनके साथ हो जाते हैं। विवश होकर नही अपने आप। पुरुष ही नही स्त्रिया भी। युवक ही नही वृद्ध और बालक भी। आज भी साथ मे काफी स्त्रिया और बच्चे आए थे। कूदते फादते और हसते खेलते।

हर्ष मे कोई तो रोटी खाकर आए थे और कोई भूखे ही चल दिए। कुछ आगे चलने की नीयत से आए थे और कुछ अपने साथियो को देख-कर साथ हो गए। कुछ एक के माता-पिताओ को सूचना ही नही मिली होगी। अत वे बेचारे चिंता करते होगे अपने बच्चो की। पर उनकी तो अपनी टोलिया चल रही थी।

बच्चो की एक टोली मेरे साथ हो गई। पाच चार बच्चे थे। सारे छह सात वर्षों से ऊपर नही थे। एक बच्चे के कधे पर प्लास्टिक की केतली लगाई हुई थी। वार-वार वे उसे वदल रहे थे। प्यास लगने पर एक ने पानी पीया और अपने साथियो को भी पिलाया। केतली खाली हो गई। सोचने लगे चलो वोझ कम हुआ। पर आगे जव प्यास लगी तो कण्ठ सूखने लगे। अब पूछने लगे गाव कितनी दूर है ? जो भी कोई मिलता उससे ही पूछते। थकने पर मनुष्य की यही दशा होती है। सशक्त मनुष्य किसी से कुछ नही पूछता। कमजोर—थका हुआ ही पूछता है गाव कितनी दूर रहा। फिर जव दूर से गाव दीखने लगा तो कहने लगे—अरे ! वह गाव आ गया। पर गाव आया था या वे आए थे ?

कुछ वहिनें तो इतनी थक गई कि आगे चल ही नही सकी। इला वहन और वसन्त वहन उनमे प्रमुख थी। वे गुजराती वहने राजस्थान की रेती को क्या जाने ? पहले तो खुशी-खुशी मे साथ हो गई पर अव चला नही गया तो छाया देखने लगी। छाया वहा कहा थी ? वहुत चलने के वाद कभी कोई जगली वृक्ष—खेजडा आता था। वह भी रास्ते से हटकर। वह भी छोटा सा। वैठने के लिए अपर्याप्त। उसके भी नीचे काट। पर जो थक जाता है वह अच्छा वुरा कुछ भी नही देख सकता। अत वे भी वैठ गई। साधुओ ने कहा—अव तो गाव वहुत दूर नही है। पर आश्वासन कव तक काम दे सकते है। जो स्वय हार जाता है उसे प्रोत्साहन देकर जिताना वडा कठिन है।

दुलरासर मे मेला-सा लग गया। चारो ओर मनुष्य ही मनुष्य दीख रहे थे। मोटरो और कारो का जमघट लग गया था। मध्याह्न मे आचार्यश्री ने समागत लोगो तथा ग्रामीणो को उपदेश दिया और करीव तीन वजे वहां से फिर विहार हो गया।

❂

२६-२-६०

गोलसर मे हम लोग जैन भवन मे ठहरे थे। जैन-भवन रतनगढ निवासी जुहारमलजी तातेड द्वारा अभी हाल ही मे बनाया गया था। उनकी वडी भावना थी कि आज तो आचार्यश्री यहा ही ठहरे। इसीलिए उन्होने वहुत प्रार्थना की। पर आचार्यश्री के पास इतना समय कहा था ? आचार्यश्री कहा करते हैं—मेरे पास अनेक चीजो की वहुलता है पर समय की वहुलता नही है। वहुत सारे लोगो के पास समय की वहुलता है अत यो ही वातो मे वैठे-वैठे उसे विता देते है। मेरा उनसे अनुरोध है वे अपने समय का दान मुझे कर दें।

कलकत्ते से आते समय मार्ग मे रोकने वालो को वे समझाते—भाई हमे अभी सरदारशहर जाना है। वहा हमारे एक वृद्ध साधु है, एक दूसरे साधु अनशन कर रहे है अत मुझे उनसे मिलना है। अव मत्री मुनि भी दिवगत हो चुके है और मुनिश्री सुखलालजी भी निर्वृत्त हो चुके है। सरदारशहर भी पीछे रह चुका है। पर आचार्यश्री उसी वेग से चल रहे हैं। द्विशताब्दी समारोह सामने जो है। तव तक हर हालत मे राजसमद पहुचना ही पडेगा। अत इतना थोडा चलकर दिन भर कैसे रुका जा सकता है ? आचार्यश्री ने उन्हे वहुत समझाया पर वे किसी तरह नही माने। एक प्रकार से उनके नम्र अनुरोध ने हठ सा ही पकड लिया। अत. आज दिन भर और रात भर आचार्यश्री को गोलसर मे ही ठहरना पडा।

मैंने अनेको वार देखा है आचार्यश्री अपने निश्चय पर अडिग रहते है। जो कुछ कह देते है उसे भरसक पूरा करने का प्रयत्न करते हैं।

कोई उनके निश्चय मे परिवर्तन करना चाहे तो वह प्राय असफल ही होता है, किन्तु यह उनकी एक विशेषता है कि अपने निश्चय पर वे सबको सहमत करना चाहते है। यदि कोई सहमत नही होता है तो उसे बार-बार समझाने का प्रयत्न करते हैं। यहा तक कि साधारण व्यवहार की बातो मे भी वे साधु तथा श्रावको की सहमति को आगे लेकर चलते है। अनेक व्यक्तिगत प्रसगो पर कोई हठ करके बैठ जाता है तो वे सहसा उसे निराश करना भी नही चाहते। उनका यह मत्र है कि भरसक अपनी कठिनाइया दूसरो के सामने रख दी जाए पर यथासभव किसी प्रार्थी के मन को नही तोडा जाए। इसीलिए यद्यपि आज रात मे आचार्यश्री यहा नहीं ठहरना चाहते थे पर भक्तो की प्रार्थना के आगे उन्हे झुकना पडा, और रात यही बिताने का निश्चय करना पडा।

आहारोपरान्त पजाब तेरापथी सभा के अध्यक्ष लाला शिवनारायण अग्रवाल ने अपने साथियो सहित पजाब मे अधिक से अधिक साधु-साध्वियो को भेजने का निवेदन किया। उनकी प्रार्थना थी कि कम से कम १६ सिघाडे तो उधर भेजे ही जाने चाहिए। आचार्यश्री ने उनकी प्रार्थना सुनी और यथासभव उसे पूर्ण करने का आश्वासन भी दिया। इसी प्रसग को लेकर आचार्यश्री ने साधुओ से कहा—

"हमारा सघ वर्तमान मे प्रगतिशील धर्म-सघो मे से एक है। आज ऐसे धर्म-सघो की आवश्यकता है जो रूढिवाद से परे शुद्ध अध्यात्म-भाव से जन-जन के आत्मधर्म का स्पर्श करें। हम इसी दृष्टिकोण को लेकर आगे बढना चाहते हैं—और बढ रहे हैं। इसीका यह परिणाम है कि पजाब मे इन थोडे से वर्षो मे न केवल हमारा प्रवेश हुआ है अपितु कुछ-कुछ सफलता भी मिलने लगी है। साधुओ! तुम लोग दृढता से आगे बढते जाओ। मुझे अपने कार्य मे जरा भी साम्प्रदायिकता की गध नही आती। यदि साधु लोग वहा जमकर काम करें तो मुझे पजाब मे अनेक सभावनाएं

दृष्टिगत होती हैं। वैसे हमारी परम्परा के अनुसार हमे प्रतिवर्ष चातुर्मासों का निर्धारण करना पडता है। पर उससे प्रसार मे कुछ बाधाए आती हैं, यह अनुभव हो रहा है। जो साधु जिस क्षेत्र मे एक वर्ष चातुर्मास के लिए जाते है, वे दूसरे वर्ष लौट आते है या बुला लिए जाते है। जो थोडा-बहुत परिचय-सम्पर्क होता है वह टूट जाता है। दूसरे साधुओ को पुन परिचय मे उतना ही समय लगाना पडता है। दूसरे वर्ष वे भी लौट आते है। इस प्रकार प्रसार का क्रम जम नही पाता है। अत अच्छा हो साधु लोग अपना-अपना कार्य-क्षेत्र चुन लें और वही कुछ वर्ष जम कर कार्य करे। एक हाथ से होने वाला कार्य कुछ अधिक लाभदायक हो सकता है, ऐसा मेरा विचार है। यदि कोई साधु-साध्वी अपना कार्य-क्षेत्र चुनना चाहे तो मैं उनके अनुकूल व्यवस्था करने का प्रयास करूगा। पहले भी हमारे सघ मे ऐसा होता आया है। आज उसे पुनरुज्जीवित करने की आवश्यकता है।'

साधु-जन काफी थे और जैन-भवन छोटा था। दिन मे तो हम लोगो ने किसी प्रकार अपना काम चला लिया। पर रात्रिशयन के लिए स्थान पर्याप्त नही था। एक आदमी सो सके व्हा दो आदमी बैठ तो सकते है, पर सो कैसे सकते है? इसीलिए हम कुछ साधुओ को जो दीक्षा-पर्याय मेछोटे थे, सोने के लिए बाहर दूसरे स्थान पर जाना पडा। गाव के एक गृहस्वामी ने अपने घर मे हमे रात-रात ठहरने की अनुमति दे दी थी। पर सायकाल सूर्यास्त के बाद जब हम वहा पहुँचे तो गृहस्वामिनी दरवाजे पर आकर खडी हो गई और कहने लगी—हमारे यहा आपके ठहरने के लिए कोई स्थान नही है। एक तरफ तो अधेरा बढता जा रहा था और दूसरी ओर जिस स्थान की आशा लेकर हम आए थे वह स्थान मिल नही रहा था। हम बडी दुविधा मे पड गए। सोचने लगे—आखिर रात कहा बिताएगे? हमने प्रयास किया गृहस्वामिनी को समझाने का—बहन! हम तो साधु लोग है। सदा तो तुम्हारे घर रहेगे नही, रात-रात विश्राम करना चाहते है। प्रात काल अगले गाव चले जाएगे। अत रात-रात के लिए हमे स्थान

देने मे तुम्हारे क्या आपत्ति है ?

वह कहने लगी नही, मैंने कह दिया हमारे यहा कोई स्थान नही है। हम आश्चर्यान्वित रह गए।

हमने फिर कहा—बहन ! भले ही तुम हमे स्थान मत दो, पर ऐसा तो मत कहो तुम्हारे पास स्थान नही है। हमने दिन मे देखा था कि तुम्हारे घर पर एक ओरा (कमरा) खाली पडा है। कृपया हमे असत्य समझाने के लिए तो विवश मत करो। इतने मे गृहस्वामी भी जो अपना ऊट लेकर जगल गया हुआ था, आ गया। हमने उससे कहा—भैया ! तुम्ही ने तो हमे दिन मे कहा था कि रात मे हम अपना स्थान आपको दे देंगे। अत उसी भावना से हम आ गए। अब तुम्हारी पत्नी कहती है—हम तो स्थान नही देंगे। तुम हमे दिन मे मना कर देते तो हम अपना दूसरा स्थान खोज लेते। पर अब बताओ रात मे कहा जाए ? वह भी बेचारा निरुपाय था। कहने लगा—महाराज, मैं क्या करू ? स्त्रिया नही मानती हैं तो मै आपको कैसे ठहरा सकता हू ?

निदान हमको वहा से हटना पडा। रास्ता गदा था सो तो था ही। पर यहा आज-कल अपने-अपने घरो की सीमाओ को काटो से आच्छादित किया जा रहा था अत सारे मार्ग मे यत्र-तत्र काटे बिछे थे इससे चलने में बडी कठिनाई हो रही थी। अधेरा भी बढने लगा था पर जाए भी तो कहा ? आखिर दूसरे स्थान मे गए। वहा भी गृहपति ने स्थान देने से निषेध कर दिया। फिर तीसरे मकान मे गए। वहा एक परिचित व्यक्ति ने रात भर के लिए आश्रय दे दिया। हालाकि मकान साफ तो नही था। सर्दी से बचने के लिए भी काफी नही था। पर उसने आश्रय देने की जो अनुकम्पा की वह क्या कम थी ? हमे भी खुशी हुई कि चलो रात भर रहने के लिए मकान तो मिला।

रात मे इन सब घटनाओ को स्मरण कर इतने हसे कि पेट दुखने

लगा । कुछ लोग समझते है यहा स्थली-प्रान्त में सत-जनो को क्या कठि-नाई हो सकती है ? खूब आराम से रहते है। पर कभी जब रहने के लिए स्थान ही नही मिल सकता तो रोटी-पानी की तो वात ही अलग है ? हा, सतो को तो इन कठिनाइयो मे भी हसना चाहिए । पर जो स्थिति है वह तो स्पष्ट ही है ।

२४ २-६०

एक भाई ने अपनी सहोदरी भगिनी की शिकायत करते हुए कहा—आचार्यवर! यह क्रोध बहुत करती है। बहन स्वय एम० ए० उत्तीर्ण विदुषी लडकी थी। एल० एल० बी० मे वह पढ रही थी। इन दिनो आचार्यश्री के दर्शनार्थ आई हुई थी। आचार्यश्री ने उसे अवसर पाकर पूछ ही लिया - क्यो तुम्हे गुस्सा बहुत आता है?

बहन – हा, क्रोध तो मुझे आ जाता है। छोटी-छोटी बातो पर भी मैं गुस्सा हो जाती हू।

आचार्यश्री—क्या क्रोध करना अच्छा है?

बहन—अच्छा तो नहीं है, पर क्या करू मेरी यह आदत ही हो गई है।

आचार्यश्री—यह आदत अच्छी नही है। तुम जैसी पढी-लिखी लड़की को यह कभी शोभा नही देता। तुम कुछ देर सोचो अपनी आदत को कैसे छोड सकती हो। उसने सोचने मे काफी समय बिताया और फिर कहने लगी—आचार्यप्रवर! मुझे एक प्रतिज्ञा करवाइये।

आचार्यश्री—क्या प्रतिज्ञा?

बहन—एक वर्ष के लिए बिल्कुल गुस्सा नही करना।

आचार्यश्री—पर तुम्हारे लिए क्या यह सभव है कि तुम गुस्सा करना छोड दो?

बहन—सभव क्या नही होता मनुष्य के लिए।

आचार्यश्री—देखना, बडा कठिन काम है।

बहन—यह तो मैं जानती ही हू । पर जब गुस्सा करना मुझे छोडना ही है तो आज ही क्यो न छोड दू ।

आचार्यश्री—अगर गुस्सा आ जाए तो ?

बहन—आ जाए तो उस दिन नमक नही खाना । देखू वह कितने दिन आता है । आचार्यश्री ने उसे प्रतिज्ञा करवा दी और उसने कर ली। साधु-सगति का यही तो फल है । दूर-दूर से आने वाले दर्शनार्थी यदि इसी भावना से आए तो लाभ स्वय उनसे चिमट नही जाए ? पर केवल रूढि निभाना तो कोई विशेष महत्व नही रखता । दूर-दूर से आने वाले दर्शनार्थी शायद इस प्रसग को जरूर पढेगे । और ऐसी आशा करने का कोई कारण नही है कि वे इससे कुछ लाभ नही उठाएगे ।

मध्यान्ह मे आचार्यश्री "हनुमान बालिका विद्यालय" मे प्रवचन करने पधारे । सूरजमल नागरमल की ओर से विशाल रूप से चलने वाले जन-हित के कार्यो मे एक प्रवृत्ति यह भी चलाई जाती है । फार्म के वर्तमान अधिकारी श्री मोहनलालजी जालान, जो यहा कार्यवश आए थे, प्रवचन मे उपस्थित थे । उन्होने आचार्यश्री का स्वागत करते हुए कहा—आचार्य-श्री देश की छोटी-छोटी और छोटे-छोटे लोगो तथा बच्चो की समस्याओ को उतना ही महत्व देते है, जितना बडी-बडी तथा बडे-बडे लोगो की समस्याओ को महत्व देते है । यह बडे ही हर्ष का विषय है । हमारे इस छोटे से विद्या मदिर मे आकर उन्होने अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है । इसका हम हृदय से स्वागत करते है ।

२५-२-६०

आज भी वही दस मील का विहार था। यहा मुनिश्री किस्तूरमलजी तथा मुनिश्री जयचन्दलालजी स्थिरवास मे हैं। मुनिश्री किस्तूरमलजी का पैर टूट जाने के कारण कई वर्षों से चलने मे असमर्थ हैं तथा मुनिश्री जयचन्दलालजी की आखो की ज्योति सदा के लिए विलीन हो गई। इसीलिए चार साधु मुनिश्री नवरत्नमलजी के नेतृत्व मे गत वर्ष उनकी सेवा मे थे। सचमुच सेवा करना भी एक असि धारा व्रत है। मुनिश्री किस्तूरचन्दजी तो बिना सहारे के उठ भी नही सकते। उनके सारे दैहिक कार्य साधुओ के सहयोग से ही होते है। मुनिश्री जयचन्दलालजी भी चलने मे पर निर्भर हैं। क्योंकि शास्त्रीय-विधि के अनुसार बिना देखे तो कोई चल नही सकता और इसलिए कि मुनिश्री जयचन्दलालजी अपने पैरो के नीचे आने वाले किसी प्राणी या पदार्थ को देख नही सकते, उनको दूसरो के सहारे ही चलना पडता है। पर दोनो साधुओं की सेवा व्यवस्था ऐसी सुघर है कि जितनी शायद कही-कही पुत्र भी पिता की नही करते। तेरापथ की यह सेवा-भावना ही सभी सदस्यो के मन को भविष्य की चिंता से मुक्त रखती है।

मुनिश्री नवरत्नमलजी ने उनकी सेवा का सुयश तो पाया ही परन्तु साथ ही साथ यहा के विद्यार्थियो मे भी उन्होने प्रशसनीय कार्य किया है। रात्री के शात वातावरण मे पचासो विद्यार्थियो ने समवेत स्वर मे अपना कण्ठस्थ तत्त्वज्ञान आचार्यश्री को नमूने के तौर पर सुनाया। जिसे सुनकर आचार्यश्री बहुत ही प्रसन्न हुए।

सचमुच ही ग्राज देश के विद्यार्थियो मे ग्रात्म-जागरण की वडी भारी ग्रावश्यकता है। वह ग्राज फैशन तथा सिनेमा जैसे वाह्य ग्राकर्षणो में फसकर जैसे ग्रपनी ग्रात्म-सरक्षा को भूल ही गया है। इसीलिए उसमें ग्रनुशासनहीनता के ग्रकुर, ग्रकुर ही नही वल्कि वृक्ष भी फलते जा रहे हैं। वहुत से शिक्षा-शास्त्रियो को भी ग्रव यह ग्रनुभव होने लगा है कि शिक्षण मे ग्रध्यात्म-शिक्षा का भी स्थान रहना चाहिए। पर ये सव तो सरकार की वातें हैं। सरकार के सामने समस्याए तो होगी ही। पर वह इस मामले मे सुस्त चलती है यह तो स्पष्ट ही है। ग्रनेक वार प्रश्न उठाए गए है कि शिक्षा मे ग्रध्यात्म का स्थान होना चाहिए। सरकार ने भी उसे स्वीकार किया है पर वह कार्य-रूप मे कव परिणत हो सकेगा यह नही कहा जा सकता। कई सस्थाग्रो ने निजी तौर पर उसकी व्यवस्था जरूर कर रखी है। उसमे तेरापथी महासभा का भी ग्रपना स्थान है। श्री केवलचन्दजी नाहटा इस सवन्ध मे काफी प्रयास कर रहे है। पर उनका यह प्रयास ग्रभी तक साधु-सतो के सहयोग मिलने तक ही सीमित है। जहा साधु लोग नही हो वहा भी यह प्रयास वढना ग्रावश्यक है। यहा तो मुनिश्री नवरत्नमलजी तथा उनके सहयोगी साधुग्रो ने ग्रच्छा काम किया है। यह न केवल समाज सुदृढता का ही प्रश्न है वल्कि इसका महत्व तो इसलिए वहुत ग्रधिक है कि इससे छात्रो मे ग्रात्मोदय की भावना घर करती है। तथा वे सच्चरित्र-सस्कारित होकर देश के सुयोग्य नागरिक वनते है।

डूगरगढ के भाई-वहन यहा काफी सख्या मे उपस्थित हुए थे। उन्होने डूगरगढ पधारने का निवेदन भी किया। पर ग्रभी वह सभव नही था।

२६-२-६०

सर्दी विदा ले रही है और गर्मी प्रवेश कर रही है। दिन मे कडी धूप पडती है और रात मे मीठी-मीठी ठड। सक्रमण-वेला मे खतरे तो होते ही है। इसीलिए अनेक साधु ज्वर की चपेट मे आ गये। हमारे "सहाय" मे कुछ साधु ज्वर ग्रस्त हो गये थे। तृतीया तक बीदासर पहुचने का निर्णय पहले ही हो चुका था अत यहां अधिक ठहरने का तो प्रश्न ही नही रहा। आचार्यश्री तो आज प्रात काल ही यहा से विहार कर देना चाहते थे। पर श्रावको के अत्यन्त आग्रह के कारण यहा से आज साय तीन मील का विहार कर लूनासर आये। ज्वरग्रस्त साधुओं को तो यही छोडना पडा। श्रावको ने इस आधे दिन के लिए भी इतना जोर लगाया कि जितना शायद महीने के लिए भी नही लगाना पडे। समय पर छोटी चीज भी वडी हो जाती है।

आज अष्टमी थी अतः आचार्यश्री को साय आहार की आवश्यकता नही थी। राजलदेसर से पानी लेकर चले थे उसे लूनासर तक पी लिया। सूर्यास्त तक शेष पानी को समाप्त कर सभी सत एक छोटी-सी कुटिया में गुरुवन्दन के लिए पहुचे। गाव छोटा था और सत अधिक थे। अतः आचार्यश्री ने पहले ही आदेश दे दिया कि सव साधु अपने-अपने सोने के लिए स्थान की खोज कर लें, नही तो फिर रात मे ठिठुरना पडेगा। हम लोग वहुत सारे स्थान देख आये थे पर उसके पास ही जहा आचार्यश्री सोने वाले थे एक छोटी-सी कुटिया और थी। वह कुछ गर्म भी थी। और उसी व्यक्ति की थी जिसकी दूसरी कुटिया में आचार्यश्री स्वय सोने

वाले थे। श्रावको ने देखा साधुओ के सोने के लिए स्थान की कमी रहेगी अत. दूसरी कुटिया के लिए भी उन्होने गृहस्वामी को राजी कर लिया और आचार्यश्री से निवेदन किया कि यह स्थान भी खाली है। साधु लोग इसमे भी सो सकते है। आचार्यश्री ने देखा यह स्थान पहले तो खाली नही था, अब खाली कैसे हो गया ? इसीलिए श्रावको से पूछा—यह स्थान पहले तो खाली नही था ?

श्रावक—पहले वे स्वय इसमे सोना चाहते थे।

आचार्यश्री—अब कहा सोएगे ?

श्रावक—अब वे दूसरी जगह सो जाएगे।

आचार्यश्री ने दूर बैठ गृहस्वामी से पूछा—क्यो ठाकुर साहब हम रात मे यहा सो जाए ?

ठाकुर—हा, महाराज आराम से सोइए।

आचार्यश्री—आपके कोई कठिनाई तो नही होगी ?

ठाकुर—नही, हमारे पास तो और बहुत से स्थान हैं आप कोई बार-बार थोडे ही आते है। उनकी ओर से पूरा सन्तोष हो जाने के बाद आचार्यश्री ने हमे वहा सोने की आज्ञा दी। ठाकुर लोगो पर इसका अच्छा प्रभाव पडा और वे रात के प्रवचन मे भी काफी सख्या मे आये।

२७-२-६०

प्रात काल विहार से पहले आचार्यश्री अन्तःपुर मे ठकुरानियो को दर्शन देने गये। उनसे पूछा—रात मे तुम लोगो ने उपदेश सुना था? वे कहने लगी—महाराज! हम लोग घर से बाहर कैसे जा सकती हैं? आचार्यश्री के अधरो पर स्मित खेलने लगा। शायद इसलिए कि भारत आज नव-प्रकाश से प्रभासित होने जा रहा है और यहा अब तक उसकी पहली किरण ने भी प्रवेश नही पाया है। बीसवी सदी के इस उन्मुक्त वातावरण मे भी ये बहने महलो के जो केवल खण्डहर मात्र रह गये हैं, सीखचो मे बन्द पडी है। पर फिर भी उनका अन्त करण शुद्ध था। आचार्यश्री ने उन्हे एक भजन सुनाया और बताया कि साधु कौन होता है? कुछ बहनो ने विविध प्रतिज्ञाए भी की। कुछ बहनो ने अणुव्रतो को भी ग्रहण किया। तथा कुछ बहनो ने आचार्यश्री को गुरू-रूप मे स्वीकार किया। कौन कहता है जैन धर्म केवल ओसवालो के ही लिए है?

इस सारी स्थिति का श्रेय गगाशहर निवासिनी पान बाई को है। वह अपने ढग की एक अच्छी श्रम-शीला कार्यकर्त्री है। ठेठ कलकत्ते से वह आचार्यश्री की पदयात्रा मे साथ रही है। जहा भी आचार्यश्री गए वहा वह पीछे नही रही। रास्ते मे कई बार वह अस्वस्थ भी हो गई, उसके पैर भी सूज गये पर उसने वाहन का कभी प्रयोग नही किया। उपवास, सामायिक, स्वाध्याय आदि भी वह नियमित रूप से करती थी। उसका जीवन सब तरह से स्वावलम्बी है। दूसरे सब आश्रय उसके लुट चुके है तब वह किसी पर निर्भर रहती भी तो कैसे? अपने सारे दैनिक कार्यक्रम

के साथ साथ उसमे प्रचार की भी भारी लगन है। जहा भी उसे अवसर मिलता वह वडी निर्भीकता से अणुव्रतो की चर्चा छेड देती। इसीलिए उसने इस यात्रा मे अनेक लोगो को अणुव्रती वनाया है। पुरुषो के बीच भी वह वडी निर्भकिता से अणुव्रत के नियम बताती। यद्यपि वह अधिक पढी-लिखी नही है पर फिर भी उसकी कार्य करने की लगन अथाह है। थोडी-सी पूजी मे अपना जीवन-निर्वाह कर वह जितना समय सत्सगति मे लगाती है वह आश्चर्यजनक है। समाज की अन्य वहने भी उसकी प्रवृत्तियो से प्रेरणा ले सकती हैं।

लूणासर से पडिहारे का रास्ता एकदम टीबो से भरा पडा है। पहले जब सडको पर चला करते थे तो पैर घिस-घिस कर इतने सुन्न हो जाते कि वालू पर चलने की इच्छा होती थी। उस समय जब पहले दिन बालू पर चलने का अवसर मिला था तो पैरो को वडी प्रसन्नता हुई थी। सुकोमल रजोरेणु का स्पर्श पाकर जैसे मन भी पुलकित हुआ जाता था। अब जब पैर वालू मे धस जाते है तो फिर सडक याद आने लगती है। वडा विचित्र नियम है इस मन.प्रकृति का। प्राप्त की उपेक्षा कर सदा यह अप्राप्ति मे भटका करता है।

पडिहारे मे पहले प्रवचन हुआ। फिर भिक्षा आई। आचार्यश्री भी कुछ घरो मे स्वय भिक्षा लेने के लिए गये। मैं भी साथ था। एक घर मे जब वे भिक्षा कर रहे थे तो एक भाई ने आग्रह किया—आज मैं तो मिष्टान्न ही दूंगा यह मेरी इच्छा है। आचार्यश्री मिष्टान्न नही लेना चाहते थे। पर उसके आग्रह को देखकर कहने लगे—अच्छा तुम्हारी बात हम मानते है तो हमारी वात तुम्हे भी माननी पडेगी। शब्द थोडे थे पर उनमे भाव वहुत गहरे थे। उनके पीछे न जाने उनकी कितनी सवेदना छिपी पडी थी। उस शब्द सकेत ने आत्मा को गद्गद् कर दिया।

प्रथम प्रहर में एक विद्यार्थी (विजयसिंह) मेरे पास आया और एक पत्र मुझे दिखाया। कहने लगा—मैं इसे आचार्यश्री के सामने परिषद् मे पढना चाहता हू। मैंने पत्र पढा तो मुझे लगा—शायद इसे परिषद् मे पढना उचित नही होगा। अत मैंने उसे सुझाव दिया तुम इसे परिषद् मे मत पढो क्योकि उसमे कुछ ऐसे सुझाव रखे गये थे जो हमारी वर्तमान पद्धति पर सीधे चोट करते थे। यद्यपि उसने अपने सुझाव वडी नम्रता से रखे थे पर फिर भी मुझे लगा परिषद् मे उसकी प्रतिक्रिया उचित नही होगी। अत मैंने उसे सुझाव दिया तुम इसे परिषद् मे पढोगे तो सभवत' लोगो मे तुम्हारे प्रति भावना अच्छी नही होगी। अत तुम इसे आचार्यश्री को एकान्त मे ही निवेदन कर दो। वे वडे क्षमाशील हैं। तुम्हारे सुझावो का समुचित समादर करेंगे। उसके भी यह वात जच गई और उसने मध्याह्न मे एकान्त मे आचार्यश्री को अपना पत्र पढा दिया। आचार्यश्री ने उसे पढा तो कहने लगे—तुम इसे परिषद् मे पढ सकोगे? वह तो तैयार था ही। अत उसी समय पत्र को परिषद् मे पढ दिया। मैंने जब सुना तो अवाक् रह गया। विचार आया आचार्यश्री कितने सहिष्णु है जो अपनी प्रतिकूल वात को भी सुनते है—पढते हैं और इतना ही नही उसे परिषद् मे रखने मे भी सकोच नही होता। उस वात का उस विद्यार्थी पर भी वडा अनुकूल प्रभाव पडा और वह प्रशात चेता होकर मेरे पास आया और मुझसे सारी बाते कही। मैंने देखा—सचमुच यही एक ऐसा गुण है जो आचार्यश्री के विपरीत लोगो को भी उनके समर्थको मे परिणत कर देता है।

मध्याह्न मे विद्यार्थियो की एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। पर आचार्यश्री आजकल समागत साधु-साध्वियो की देखभाल मे इतने व्यस्त है कि उन्हे वहुत ही थोडा अवकाश मिल पाता है। इसीलिए आहार के वाद अविराम इसी कार्य मे लगे रहते है। यही कारण था कि गोष्ठी मे वे अपना समय नही दे सके।

रात्रि मे ठीक प्रार्थना के वाद प्रश्नोत्तरो का कार्यक्रम रखा गया था। पर आजकल जबकि हमारा नित नया घर बसता है। रात्रि मे सोने के लिए भी नित नई जगह निश्चित करनी पडती है। व्यवस्था के अभाव मे कौन कहा सोए, यह वडी समस्या खडी हो जाती है। अतः आवश्यक होते हुए भी प्रश्नोत्तरो के कार्यक्रम से पहले प्रत्येक साधु के सोने का स्थान निश्चित करना था। एक विचार था कि आचार्यश्री अपने कार्य का विभाजन कर दें तो क्या उन्हे आवश्यक कार्य करने मे अधिक समय नही मिल सकेगा ? व्यवस्था की छोटी-छोटी वातो मे ही आचार्यश्री का कीमती समय चला जाता है। पर आचार्यश्री कार्य को कार्य की ही दृष्टि से देखते हैं। इसीलिए कोई भी कार्य उनके लिए छोटा और वडा नही है। छोटे-छोटे कार्यो को भी वे उसी उत्साह से करते हैं जितना वडों को। यही तो उनके उत्तरदायित्व सरक्षण की भावना का एक सही निदर्शन है।

इससे पहले कि प्रश्नोत्तरों का कार्यक्रम चले आचार्यश्री ने मुनिश्री ताराचन्दजी (चूरू) को भापण करने का आदेश दिया। एक साधना सिद्ध मच पर से जहा आचार्यश्री वोले दूसरे व्यक्ति का वोलना समकक्षता को कैसे प्राप्त कर सकता है ? पर शिक्षण का यह एक ऐसा माध्यम है कि जिसके आधार पर आचार्यश्री ने अपने अनेक शिष्यो को अच्छा वक्ता वनाने मे सफलता प्राप्त की है। आज जो कुछ साधु अच्छे वक्ता हैं वे भी एक दिन इस मच पर से अस्पप्ट और तुतली भापा मे ही वोले थे। पर आचार्यश्री का यह प्रयोग सचमुच अपनी लक्ष्य सिद्धता तक पहुचा है। हम लोगो को वडा सकोच होता है कि आचार्यश्री के पास कैसे वोलें ? इसीलिए कई वार आख वचाने का प्रयत्न करते है। पर गुरू की दृष्टि से कौन कहा तक छिप सकता है। इसीलिए आचार्यश्री हमे अनेक वार बुलाते है और अपने सामने भापण करवाते हैं। भापण के वाद उसके

गुण-दोषो की आलोचना करते है। एक-एक शब्द की तह खोजते हैं। उच्चारण की स्पष्टता पर ध्यान देते हैं। भावों मे सगति बिठाते हैं। ध्वनि को सयमित करवाते है। इतना ही नही बल्कि भाषण देते समय खडे किस प्रकार रहना चाहिए यह भी बतलाते हैं। जो यहा से उत्तीर्ण हो जाता है वह सभवत फिर कही पराजित नही हो सकता। इसीलिए यह एक प्रकार से हमारा परीक्षा-पक्ष भी बन जाता है। भाषण मे सगीत को भी आचार्यश्री महत्वपूर्ण मानते है। अत यदा-कदा हमारी गायन-परीक्षा भी इसी मच पर से होती रहती है।

२८-२-६०

पडिहारा से नौ मील चलकर करीब सवा नौ बजे हम लोग ताल-छापर स्टेशन पहुचे। स्टेशन पर कोई बस्ती नही है। केवल एक धर्मशाला है। पर यह स्थान इतना बीच मे वसा हुआ है कि वह छापर, सुजान-गढ, लाडनू, चाडवास तथा बीदासर आदि अनेक गावो के लोगो से खचाखच भर गई। पडिहारे के भी अनेक भाई-बहन ठेठ यहा तक पहु-चाने के लिए आये थे। रास्ता प्राय सडक होकर ही चलता था। पर कुछ दूर तक रेलवे लाइन होकर ही चलना पडा था। उस पर ककर इतने थे कि पग-पग पर कष्टो का सामना करना पड रहा था। यद्यपि ककर तो सडक पर भी थे पर वे वालू से ढके हुए थे। अत चलते समय कोई कष्ट अनुभव नही हो रहा था। मन मे कल्पना आ रही थी कि जीवन मे भी यदि कोई इस प्रकार ककर रोडो को ढकता रहे तो कितना अच्छा हो ? पर ऐसा सौभाग्य कितनो को मिला है ? जीवन से बाधाएं निरस्त ही हो जाए यह कभी सभव नही है। पर यदि कोई उनको ढकता भी रहे तो कम-से-कम गति मे तो अवरोध नही आये। हा, सभल कर चलना तो हर स्थिति मे अपेक्षित है। अत ढके हुए ककरो से भी साव-धान होकर चलना आवश्यक है। उस स्थिति मे जबकि पैरो मे लगी हो तब तो और भी सभल कर चलना पडता है। पर उस सौभागी से किसको ईर्ष्या नही होगी जिनकी बाधाओ को गुरुजन ढकते रहते हैं।

मध्याह्न मे सुधरी निवासियो की ओर से श्री मोतीलालजी राका ने द्विशताब्दी समारोह का एक कार्यक्रम सुधरी मे आयोजित करने का

नम्र आवेदन किया। उनके आवेदन का आधार यह था कि सुधरी तेरापथ के इतिहास का एक महत्वपूर्ण पृष्ठ है। वह यही भूमि है जहा आचार्य भिक्षु ने स्थानकवासी समाज से अभिनिष्क्रमण कर तेरापथ की ओर अभिक्रमण किया था। उसी स्मृति को सजीव बनाने के लिए उनका निवेदन था कि द्विशताब्दी समारोह का कोई एक अग यहा भी आयोजित होना चाहिए। इसके साथ-साथ आचार्य भिक्षु का जन्म स्थान कटालिया तथा निर्वाण स्थान सिरियारी भी सुधरी के बिल्कुल पास ही है। अत. उस ऐतिहासिक स्थल को अपना महत्व भाग मिलना चाहिए। पर चूकि द्विशताब्दी का प्रारभ सवत् २०१७ की आषाढ पूर्णिमा से होने वाला है। तब सुधरी इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कैसे आ सकती है यह एक प्रश्न था ? मोतीलालजी ने उसका समाधान देते हुए कहा—सुधरी एक प्रकार से तेरापथ की पृष्ठभूमि रही है। यहा स्वामीजी ने चैत्र शुक्ला नवमी के दिन अभिनिष्क्रमण किया था। यद्यपि तेरापथ की दीक्षा तो उन्होने केलवा मे ली थी। पर उसका प्रारभ तो यही से हो गया था। अत. भले ही द्विशताब्दी समारोह केलवा मे आयोजित हो, पर चैत्र शुक्ला नवमी की अक्षय तिथि को यदि उसकी पृष्ठभूमि मान लिया जाय तो भी हमे सतोष है और हमारा आग्रह है कि आचार्यश्री उस तिथि को सुधरी मे मनाने का गौरव हमे प्रदान करें।

मोतीलालजी की भाव भाषा और भगिमा मे इतना प्रभाव था कि उनकी माग पर आचार्यश्री को गभीरतापूर्वक विचार करने का आश्वासन देना पड़ा।

१-३-६०

वीदासर मे आज आचार्यश्री वृहत् जुलूस के साथ मुणोतो के नोहरे मे पधारे। मुनिश्री नेमीचन्दजी तथा साध्वीश्री सज्जनश्रीजी ने जिनकी जन्मभूमि यही है अपने-अपने भाव कुसुमो से आचार्यश्री का अभ्यर्थन किया। अभिनन्दन पत्र पढते हुए एक भाई ने कहा—हम जिनेश्वर देव से प्रार्थना करते है कि वे आचार्यश्री को युग-युग तक हमारे वीच मे प्रकाश-रश्मि के रूप मे विद्यमान रखे।

आचार्यश्री ने इस विषय पर स्पष्टीकरण करते हुए कहा—हमारा कतई यह विश्वास नही है कि जिनेश्वरदेव हमारे जीवन की गतिविधियो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करते है। अत हम उनसे ऐसी अभ्यर्थना करना भी आवश्यक नही समझते।

अपना प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने कहा—आज ऐसा लगता है जैसे मैं अपने घर मे आ गया हू। वैसे पराया मेरे लिए कोई नही है पर इस भूमि से जैसे हमारे सघ का चिर-सवन्ध रहा है। यहा के कण-कण मे सघ के प्रति भक्ति है और पूज्य कालूगणिजी की माताश्री छोगाजी की भी यह तपस्या भूमि रही है। मेरी ससारपक्षीया माता वदनाजी ने भी इसे अपनी तपोभूमि वना लिया है। वृद्धावस्था मे उन्हे समाधि मे रखना मेरा कर्तव्य है। अत भले यहा मैं वहुत दिनो से आया हू तथा वदनाजी के उपालम्भ भी सह लूगा, पर यहा आकर मैंने अपने घर मे आने का-सा अनुभव किया है।

मातुश्री वदनाजी तो आज फूली नही समा रही थी। ७५ वर्ष की

वृद्धावस्था मे भी उनके तप. स्वाध्याय का क्रम अनवरत चल रहा है। जैसे कि पातजल मे कहा गया है—"कायेन्द्रिय शुद्धिरशुद्धि-क्षयात् तपसः" बदनाजी का शरीर भी तपोभिषिक्त होकर कातिमान हो गया। इस वृद्धावस्था मे भी उनका क, ख, ग सीखना प्रारभ है। जो निश्चय ही समाज के वृद्ध लोगो के लिए एक मार्ग-दर्शन जैसा है। प्रौढ-शिक्षण की दृष्टि से यह उदाहरण अत्यन्त मोहक है। अपने आगन मे आज अपने विजयी पुत्रो के चरणो के रज-कणो का स्पर्श पाकर जैसे उनकी चिर-मौन साधना आज मुखरित हो गई थी। वे कहने लगी—आचार्यप्रवर ! आपने तो मुझ बुढ़िया को भुला ही दिया। बहुत दिनो के बाद आज मुझे इस मुख-दर्शन का अवसर मिला है। आचार्यश्री ने भी इस भावना को व्यापक बनाकर कितना सुन्दर समाधान किया था। कहने लगे—आपके लिए तो ये सारे साधु-साध्विया पुत्र-पुत्रीवत् ही है। अत भले मैं यहा देरी से आया हू, पर मैंने समय-समय पर साधु-साध्वियो को तो भेजा ही है।

पर वे तो आज सभल ही नही रही थी। हर्ष गद्गद् गिरा मे कुछ कहना चाहती थी। पर शब्द जैसे भावो की गरिमा को सहने मे असमर्थ हो रहे थे। कुछ साध्वियो ने उन्हे सुझाया आप ऐसा निवेदन करें। पर आचार्यश्री ने उन्हे रोक दिया। कहने लगे—तुम अपनी बनावट रहने दो। इनके मानस के जो प्राकृतिक भाव है वे ही मुझे अच्छे लगते हैं। कृत्रिमता मे वह मिठास नही होता जो प्रकृति मे रहता है।

अत मे आचार्यश्री ने अपनी यात्रा के अनेक मधुर सस्मरणो से उपस्थित लोगो को मत्र-मुग्ध बना दिया। लोग चाहते थे जैसे यह अमित अमृत-वर्षण अविराम होता ही रहे। पर समय तो अपनी गति से चलता ही जाता है। अत. आचार्यश्री को कार्यक्रम भी सम्पन्न करना ही पडा।

२-३-६०

जैसा कि आचार्यश्री ने सरदारशहर मे घोषणा की थी कि इस बार संघ संगठन का सारा कार्य बीदासर मे ही होगा। आचार्यवर व्यस्तता के साथ इस कार्य मे निमग्न हो गए। साधु-साध्वियो की पूछताछ के अतिरिक्त कई प्रकार की आन्तरिक गोष्ठियां भी इस प्रवास मे चली। साहित्य को सवर्धन देने की दृष्टि से अनेक साहित्य-गोष्ठियां भी आचार्यश्री के सान्निध्य मे तथा अन्यान्य सतो के सान्निध्य मे भी चली। साधुओं मे आत्म-भाव को विकसित करने के लिए कुछ आध्यात्मिक चर्चाएं भी चली। कुछ गोष्ठियो मे आचार्यश्री ने अपने कलकते के अनुभव भी सुनाए। पर बीदासर के दिनो के प्रवास मे आचार्यश्री का अधिक समय संघ-व्यवस्था मे ही गुजरा। पश्चिम रात्रि को चार बजे से लेकर रात के दस बजे तक और कभी-कभी तो बारह बजे तक भी आचार्यश्री को साधुओ की पूछताछ मे अपना समय देना पडता।

सघ की व्यवस्था की दृष्टि से फाल्गुन सुदी ११ का दिन एक अवि-स्मरणीय दिन था। उस दिन आचार्यश्री के अनुशास्ता स्वरूप को देखकर अनेक लोगो के कलेजे कापने लगे। कुछ साधुओ के अनुचित व्यवहार तथा आचार-शिथिलता को लेकर आचार्यश्री ने परिषद के बीच उन्हें कड़ा उपालम्भ दिया तथा दो साधुओ को तो सघ से पृथक् ही कर दिया। आचार्यश्री ने कहा—मुझे संख्या से मोह नही है। चाहे हमारे सघ में कम साधु भी क्यों न रह जाए पर जो रहे वे आचारवान् तथा श्रद्धाशील होने चाहिए।

चूंकि एक प्रकार से यह महोत्सव का ही अवसर है। अत. साधु-साध्विया बड़ी सख्या मे उपस्थित हैं। एक बहन ने इस वडी सख्या को देखकर एक दिन हमारे लिए पानी बना दिया। उसने तो बनाया सो बनाया पर एक साध्वी ने शीघ्रता मे उसकी पूरी पूछताछ नही की और उसे ले लिया। आचार्यश्री के पास यहा सवाद पहुचा तो आचार्यश्री ने उसी समय उक्त साध्वी को उपालम्भ दिया तथा पानी को वापस कराया। प्रवचन मे भी आचार्यश्री ने श्रावको को इस प्रकार की सावद्य अनुकम्पा करने के लिए निषिद्ध किया था।

८ मार्च को एक साध्वी भिक्षा करके आई और उसे आचार्यश्री को दिखाया। आचार्यश्री इस समय भी प्राय. व्यस्त रहते है अत' गोचरी देखने के साथ-साथ कुछ साधुओ से बातें भी कर रहे थे। पर उन्होने देखा कि उनके पात्र मे एक मिठाई भी है। साध्वी चली गई। थोडी देर मे एक साधु आए और उन्होने भी अपनी भिक्षा आचार्यश्री को दिखाई। आचार्यश्री ने देखा उनके पात्र मे भी वही मिठाई है। दूसरे कार्य मे व्यस्त होते हुए भी आचार्यश्री ने झट अपना रुख मोडा और पूछा—यह मिठाई कहां से आई ? पहले साध्विया भी इसी प्रकार की मिठाई लाई थी। क्या वह और यह एक ही घर की है ? साध्वियो को बुलाया गया, साधुओ से भी पूछा गया। पता चला कि वह एक ही घर से आई है। उपालम्भ देते हुए आचार्यश्री ने कहा—एक घर से इतनी मिठाई कैसे लाए ?

उन्होंने निवेदन किया—उनके घर तो बहुत सारी मिठाई है हम तो बहुत थोडी ही लाए है।

आचार्यश्री ने कहा—पर हमे किसी घर से इतनी मिठाई नही लानी चाहिए। जिससे गृहस्थ पर हमारा वजन पड़े।

बहुत सारे साधु-साध्वी यहीं से विहार करने वाले थे। अतः चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के दिन आवश्यक उपकरण जैसे पूंजणी, रजोहरण, टोक्सी, स्याही आदि चीजें संघ भंडार से वितरित की जाने की थी। बहुत सारे साधु अपनी-अपनी आवश्यकता की चीजें लेने आए थे। एक साधु ने आचार्यश्री से रजोहरण मांगा। आचार्यश्री ने पूछा—तुम्हारा पुराना रजोहरण कहा है ? उन्होने अपनी कांख से पुराना रजोहरण निकाल कर दिखाया। आचार्यश्री ने उसे देखकर कहा—यह तो अभी कई दिनो तक और चल सकता है। अत तुम व्यर्थ ही क्यों नया रजोहरण लेते हो ? हमे अपने प्रत्येक उपकरण का पूरा कस लेना चाहिए। फिर तो आचार्यश्री ने प्रत्येक नया रजोहरण लेने वाले साधु से उसका पुराना रजोहरण देखा। जिसका रजोहरण बिल्कुल टूट गया उसे ही नया रजोहरण मिला। बाकी साधुओ को पुराने से ही काम चलाने का आदेश दिया।

बीदासर मे शिक्षा का अपेक्षाकृत कम प्रवेश है। अत. लोग पुराने रहन-सहन को ही अधिक पसन्द करते हैं। फिर भी शासन के प्रति सबकी भा-नाए अत्यन्त नम्र हैं। इसीलिए आचार्यश्री ने इस स्थान को वदनाजी के स्थिरवास के लिए उपयुक्त समझा है।

मुनिश्री छोगालालजी ने यहा जैनेतर जातियो के लोगो को सुलभ बोधि बनाने का अच्छा परिश्रम किया है।

मेवाड से भी यहा अनेक भाई दर्शन करने आए थे।

बीदासर से चाडवास गुलेरिया होते हुए १८ मार्च को आचार्यश्री सुजानगढ पधारे। सर्वप्रथम ओसवाल विद्यालय के नव-निर्मित भव्य भवन मे आचार्यश्री का स्वागत हुआ। दिन-भर विराजना भी वही हुआ। तदनन्तर १९ मार्च को हजारीमलजी रामपुरिया के कमरे मे विराजे।

२१ मार्च को जसवतगढ स्टेशन होते हुए २२ मार्च को लाडनू पधारे। लाडनू आचार्यश्री की जन्मभूमि है। अतः यहां के लोगों को आचार्यश्री मे अपना अपनत्व अधिक दीख रहा था। पर आचार्यश्री "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त को आगे रखकर चलते हैं अतः वह इस लघु दायरे मे कैसे बध सकते है ? फिर भी लोगों ने अत्यन्त उत्साह और उल्लास से आचार्यश्री का स्वागत किया।

○

१९-३-६०

आज प्रवचन के बाद मैं भिक्षा के लिए जा रहा था। साथ मे एक भाई (रिखभचन्दजी फूलफगर) भी चल रहे थे। कुछ दूर चला हूगा उन्होने अपनी जेब मे से एक डिबिया निकाली और मेरी ओर देखकर कहने लगे—करवाइए त्याग। मैं उनका आशय नही समझ पा रहा था। अत प्रश्न भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा। उसी क्षण उन्होने डिबिया खोली और उसमे भरे "जरदे" तम्बाकू को नीचे गिराते हुए बोले—"जरदे" का। मेरा आश्चर्य और भी बढता जा रहा था। भला वह मनुष्य जो दिन भर अपने मुह मे तम्बाकू रखता हो वह यकायक कैसे छोड सकता है ? मैंने प्रश्न किया—क्यो आज यह वैराग्य कैसे आ गया ? कहने लगे—प्रवचन मे आज आचार्यश्री ने क्या थोडी फटकार बताई थी ? मुझे उस समय बडी लज्जा आई। जब आचार्यश्री ने कहा—कुछ महाशय तो ऐसे भी होते हैं जो यहा धर्म-स्थान मे आते समय भी अपने मुह मे जरदा रखकर आते हैं। सयोगवश मे भी उस समय जरदा खा रहा था। अत बात मेरे मन पर प्रभाव कर गई और मैंने सोचा बस इसी क्षण जरदे का त्याग कर दू। पर उस समय मेरे मुँह मे जरदा था उसे वहा थूकने मे भी लज्जा आ रही थी। अत मैंने सोचा वाहर जाते ही इसे थककर आजीवन जरदा खाने का त्याग कर दूंगा। सचमुच आज मुझे ग्लानि हो गई है और मैं आपकी साक्षी से प्रतिज्ञा करता हू कि जीवन भर कभी जरदा नही खाऊगा। मैंने कहा—त्याग भी क्या इतने उतावले से होते हैं ? कहने लगे—मैंने जाने कितनी बार प्रयत्न किया

है कि जरदा छोड़ दूं पर हर बार असफल रहा हूं। आज भी सोचा—जितनी तम्बाकू मेरे पास पड़ी है उसके अतिरिक्त फिर तम्बाकू नहीं खाऊंगा। पर फिर मन मे आया इस प्रकार त्याग नही हो सकेगा। इसीलिए अब जबकि भावना मे एक उत्कर्ष है, इसका त्याग कर दिया। सोचता हू भूतकाल में जिस प्रकार अनेक प्रत्याख्यानों को निभाता आया हूं तो इसे भी निभा लूंगा।

●

२३-३-६०

प्रातःकालीन प्रवचन के समय अनुशासन पर बोलते हुए आचार्यश्री ने कहा—सघ का अर्थ है कुछ व्यक्तियो का एक समूह। वह उसी अवस्था मे सुरक्षित रह सकता है जबकि सभी सदस्य अनुशासन का पालन करते हो। इन दो वर्षों मे मैं सघ से काफी दूर रहा। इस बीच मे अनु-शासन हीनता को लेकर कुछ ऐसी अप्रिय बातें हुईं जो नही होनी चाहिए थी। पर वे हुईं इसका मुझे बडा दुख है। इसीलिए इस बार इस सम्बन्ध को लेकर मैंने एक कदम उठाया था। मैं मानता हू मनुष्य से गलती हो सकती है। पर उस अवस्था मे जबकि गलतियो की सख्या बढ़ जाती है, उनके प्रतिकार को भी सशक्त बनाना आवश्यक हो जाता है। कुछ लोगों ने मेरी इस पद्धति को शाश्वत नीति ही मान लिया है। उनका कहना है अब कोई साधु गलती करेगा तो आचार्यश्री उसे परिषद् मे फटकार बताएगे। पर मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि मेरा ऐसा कोई इरादा नही है। मैं न तो दोष को छिपाने के पक्ष मे हू और न ही उसे जन साधारण के समक्ष प्रकट करने के पक्ष मे हू। जिस स्थिति मे मुझे जैसा उचित लगता है मैं वैसा ही करता हू। इस बार मैंने ऐसा प्रयोग किया है।

आज भी एक साधु को आचार्यश्री ने भरी परिषद् मे अनुशासन-हीनता के आचरण के लिए खडा किया तथा उनको कडा उपालम्भ दिया। सचमुच वह दृश्य हृदय को दहला देने वाला था। कुछ लोग तो उस समय आचार्यश्री की आकृति देखकर कापने लगे। मुनिश्री ने भी उस समय बडे भारी धैर्य का परिचय दिया। उस स्थिति मे भी जबकि

आचार्यश्री ने उन्हे कडा उलाहना दिया, उन्होने बडी भारी विनम्रता का परिचय दिया। यही कारण था कि उनके विनय ने आचार्यश्री को पिघला दिया।

मध्याह्न मे आज अणुव्रत-गोष्ठी का कार्यक्रम रखा गया था। आचार्यश्री सभा-स्थल पर ऊचे आसन पर आसीन थे। बहनो द्वारा अणुव्रत प्रार्थना प्रारभ कर दी गई थी। इतने मे कुछ नवयुवक एक अणुव्रती के बारे मे एक अभियोग पत्र लेकर आये और आचार्यश्री से प्रार्थना की कि उनके अभियोगो की निष्पक्ष जाच होनी चाहिए। आचार्यश्री ने उनके सामने ही को याद किया और दोनो पक्षो की बातों को शान्तिपूर्वक सुना। फिर दूसरे अणुव्रती ने अपने बारे मे व्याप्त भ्रान्तियो का निराकरण किया। सचमुच भ्रान्तिया भी किस तरह अपना स्थान बना लेती है उसका यह एक उदाहरण था। तत्पश्चात् दो अणुव्रती बहनो ने आचार्यश्री के सामने क्षमा-याचना की। उनका आपस मे भाभी-ननद का सम्बन्ध था। पर कुछ बातो को लेकर वह सम्बन्ध कटु हो चला था। आचार्यश्री ने दोनो को ही उपालम्भ दिया। कहने लगे—"अणुव्रतियो को अपने मन मे डम रखना शोभा नही देता। दोनो ने ही अपनी-अपनी स्थिति आचार्यश्री के सामने रखी। व्यवहार की बाधाएँ सूक्ष्म होती हुई भी कितना दुराव कर देती है और अणुव्रती इन छोटी-छोटी बातो की भी कितनी सरलता से आलोचना करते है। इस दृष्टि से उनका यह प्रसग बहुत प्रेरक हो सकता है।

भाभी ने ननद की शिकायत करते हुए कहा—आचार्यजी! मेरा अपनी आत्मा पर अधिकार है इसलिए मैं अपनी ननद से सादर निवेदन करती हू कि ये मेरे आगन पधारे। पर दूसरो की मैं किस तरह कह सकती हू? दूसरे कोई कहे या नही मैं उसका क्या कर सकती हू? पर अपनी ओर से मैं शुद्ध हृदय से कह सकती हू कि मेरा घर इनका ही

घर है चाहे जब ये आ सकती हैं। मैने अनेक वार इनको निमत्रण भी दिया था पर इन्होने स्वीकार नही किया इसमे मेरा क्या दोष है ?

ननद ने कहा—मै पहले एक वार वहा गई थी तो इन्होने मेरा सम्मान नही किया तब मैं फिर से इनके घर जाने की इच्छा कैसे कर सकती हू ?

भाभी—वह बहुत पहले की वात है। मैं मानती हू वह मेरी गलती हुई थी। पर उसके वाद तो अनेक वार निमत्रण भेजा था। ये भी तो अणुव्रती ह इन्हे भी तो अपने मन मे विगत की वातो का डस नही रखना चाहिए।

आचार्यश्री ने कहा—तुम अणुव्रती हो अत तुम्हे छोटी-छोटी वातों को वाधकर नही रखना चाहिए।

ननद—अगर ये मेरा सम्मान करेगी तो मुझे वहा जाने मे क्या कठिनाई है ? वह तो मेरे पूज्य पिताजी तथा भाईजी का ही तो घर है।

झट से स्थिति मे परिवर्तन हो गया और भाभी ने ननद के पैरो मे पडकर अतीत मे हुए असद् व्यवहार की क्षमा मागी। ननद ने भी बडे प्रेम से अपने असद् व्यवहार की उनसे क्षमा मागी। कुछ लोग सोच सकते है कि अणुव्रती भी कितनी छोटी-छोटी वातो मे उलझ जाते ह पर इसमे सोचने जैसी क्या वात है ? उलझता तो सारा जगत् ही है जो उलझ कर भी सुलझने का प्रयत्न करते ह क्या यह साधना के पथ पर आगे वढने का सकेत नही है ?

आचार्यश्री ने अपने उपसहारात्मक प्रवचन मे अणुव्रतियो को शिक्षा देते हुए कहा—अणुव्रती का जीवन जनसाधारण के जीवन से कुछ ऊँचा होना चाहिए। वे ही वाते जो दूसरे लोग करते हे अणुव्रती भी करने

लग जाय तो फिर उनके जीवन मे दूसरों से क्या विशेषता हुई ? आज भी एक अणुव्रती के राजनैतिक पक्ष को लेकर कुछ बाते मेरे सामने आईं। हालांकि अणुव्रत-आन्दोलन की यह कोई नीति नही है कि कोई अणुव्रती राजनीति मे भाग नही ले। पर दलगत राजनीति मे अणुव्रती भी फस जाय तो सुधार की आशा कहा से की जा सकती है ? मैं राज-नीति का खिलाडी नही हू अतः उसके दाव पेचो से भी अपरिचित ही हू। पर दल जहा दलदल का रूप ले लेते हैं वहा अणुव्रती को उससे बचना ही अच्छा रहता है। इसीलिए केन्द्रिय अणुव्रत समिति के पदस्थ लोगो ने तो यह प्रतिज्ञा ही कर ली कि पाच वर्षों तक सक्रिय राजनीति मे भाग नही लेंगे।

अणुव्रतियों को भी दूसरो की आलोचना से डरना नही चाहिए। हालाकि जानबूझ कर आलोचना का अवसर देना तो अच्छा नही है। पर अपने मार्ग पर चलते हुए भी यदि कोई आलोचना करता है तो उससे डरने की आवश्यकता नही है। बहुत से लोग मेरे पास अणुव्रतियो की शिकायते लेकर आते हैं। कहते हैं—हम अणुव्रत-आन्दोलन की प्रगति चाहते है इसलिए अणुव्रतियो की त्रुटियो पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते है। पर मैं जानता हू कि उनमे से कितने लोगों का दृष्टिकोण शुद्ध होता है। अनेक लोग तो अपना स्वार्थ नही सधने पर या ईर्ष्यावश ही पर-दोष-दर्शन की ओर अग्रसर होते है। फिर भी सही आलोचना को मैं महत्व देता हू और उसके लिए मैं हमेशा जागृत भी रहता हू।

मैंने आज जो कुछ कहा है वह किसी व्यक्ति विशेष के लिए नही कहा है। व्यक्ति तो केवल निमित्त मात्र होता है। वस्तुत तो वह अणुव्रत-आन्दोलन की नीति का ही स्पष्टीकरण है। नीति एक व्यक्ति के लिए नही होती। वह तो अशेष लोगो के लिए ही होती है। किसी एक माध्यम से स्पष्ट होकर वह सब लोगो के लिए विज्ञात हो जाती है।

वहनो की ओर से एक प्रश्न आया कि पहले अणुव्रतो मे एक नियम था कि तपस्या के उपलक्ष मे रुपये, पैसे, कपडे, मिठाई आदि कोई भी चीज नही लेना। अब यह नियम नही रहा है। इसलिए कुछ लोग अणुव्रतियो को वाध्य करते हैं कि अव जव नियम नही रहा है तो उन्हे नही लेने का आग्रह क्यो रखना चाहिए ? इसलिए कुछ अणुव्रती तो उन चीजो को ले लेते है और कुछ नही लेते। इस प्रकार यह एक दुविधा हो जाती है। अत· अगर आप स्पष्टीकरण करें तो उपयुक्त होगा।

आचार्यश्री ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—यद्यपि वर्तमान नियमावली मे यह नियम नही रहा है, पर इसका मतलव यह नही है कि अणुव्रती केवल नियमो तक ही सीमित रहे। नियम आखिर कितनी बुराइयो के वनाये जा सकते हैं ? वहुत सारी वातें तो गम्य ही होती है। अणुव्रत-आन्दोलन तो केवल उनकी ओर सकेत मात्र ही कर सकता है। अत· भले ही तपस्या के उपलक्ष मे ली-दी जाने वाली वस्तुओ का नियमों में निषेध नहीं हो, पर भावना में इसका निषेध रहता ही है। तपस्या जैसे आत्म-शुद्धि के अनुष्ठान मे वाहरी दिखावा किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता।

रात्रि मे आज सतजनो द्वारा अपने-अपने काव्य प्रस्तुत किए गए। उपस्थित जनता पर इसका सुन्दर प्रभाव पडा। प्रहर रात्री आने तक सभी सतो की कविताए पूरी नही हो सकी थी। और साथ-ही-साथ लोगो का भी आग्रह था कि कल यह गोष्ठी और रखी जाए। इसलिये कल फिर कवि गोष्ठी के निश्चय होने के साथ आज का यह रोचक कार्यक्रम सानन्द सम्पन्न हुआ। आचार्यश्री तो रात्रि मे वहुत देर तक विचार-विनिमय मे व्यस्त रहे।

२४-३-६०

कल पुन यात्रा का प्रारभ होने वाला है। अत आज रात मे यहा के नागरिको द्वारा विदाई का एक छोटा-सा कार्यक्रम रखा गया था। साथ मे कवि गोष्ठी तो थी ही। अत दोनो ही कार्यक्रमो का उपसहार करते हुए आचार्यश्री ने स्थली प्रदेश के किनारे पर आकर यहा के मानस का जो चित्रण किया वह सचमुच ही चिंतनीय है। आचार्यश्री ने कहा—"हम देश के अनेक प्रान्तो मे घूमे है पर राजस्थान स्थली प्रदेश मे जैसा शिक्षा का अभाव देखा वैसा बहुत ही कम स्थानो मे देखा। कही-कही तो छोटे-छोटे गावो मे भी हमने दो-दो तीन-तीन कॉलेज तक देखे। पर यहा बडे-बडे गावो मे भी कही-कही तो उच्चतर विद्यालय भी अप्राप्य हैं। जो थोडे बहुत लोग शिक्षित है वे भी अपनी शिक्षा का सदुपयोग बहुत ही कम करते है। मैंने देखा है शिक्षित लोग भी अशिक्षित लोगो की ही तरह दूसरो की आलोचना मे अधिक रस लेते है। जहा दूसरे-दूसरे क्षेत्रो मे अणुव्रत-आन्दोलन को लेकर बडी भावात्मक चर्चाए चलती थी वहा यहा उसके नाम से ही लोगो मे एक अन्य प्रकार की भावना व्याप्त हो जाती है। सचमुच ही यहा के जीवन मे एक प्रकार की ऐसी अलस और आलोचना वृत्ति है जो यहा के जीवन को पीछे धकेल रही है। यही प्रदेश एक समय मे काफी समुन्नत प्रदेश था, पर जब से यहा आलोचना वृत्ति ने स्थान लिया है यहा सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सभी दृष्टियो से ह्रास ही ह्रास हुआ है। "निंदामि गर्हामि"—मैं निंदा करता हू, गर्हा करता हू। पर वह निंदा और गर्हा दूसरो की नही होनी चाहिए अपनी ही होनी चाहिए। इसलिए स्थली प्रदेश से आगे जाते समय मैं यहा के

निवासियो को आत्म-निरीक्षण की सलाह देना चाहूगा। द्विशताब्दी समारोह का कार्यक्रम आपके सामने हैं। बाल, वृद्ध, युवक लोगो से मेरा आह्वान है कि वे आगे आए और समाज के जीर्ण-शीर्ण तथा बोझिल ढाचे को बदल कर नई मोड—नव-निर्माण की ओर अग्रसर होवे। विशेष कर उन युवको से जो सुधार की लम्बी-लम्बी डीगे हाकते हैं, यह अवसर विशेष आह्वान करता है। यह ठीक है अभी तक नई मोड की कोई स्पष्ट कल्पना सामने नही आई है। पर वह कोई आकाश से तो आने वाली है नही। आप ही लोगो मे से कुछ लोग उसकी रूपरेखा को स्पष्ट करेंगे। अत उससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। निश्चय ही वह कोई ऐसी योजना नही होगी जिससे जीवन पर बोझ आ जाए और वह चल ही न सके। यह तो जीवन को हल्का बनाने वाली योजना है। मैं आशा करता हू परिवार के परिवार उसमे अपना नाम देगे और समाज को नई मोड देगे।

उससे पहले श्री शुभकरण सुराणा ने आचार्यश्री को विदाई देते हुए अपने साथियो को आह्वान किया था कि वे भी नई मोड के पथ पर आगे बढे। उन्होने स्वय अपने परिवार को सभाव्य नई मोड के अनुसार ढालने का सकल्प कर सचमुच नवयुवको के सामने एक अच्छा आदर्श उपस्थित किया। आचार्यश्री उनकी भेंट से बडे प्रसन्न हुए और दूसरे लोगो को भी उनका अनुसरण करने का दिशासकेत दिया।

२६-३-६०

दस मील के विहार का सोच कर चले थे, वह बारह मील के करीब हो गया। यहा मील के पत्थर तो लगे हुए हैं नही जो ठीक से मील मीटर बताते। अत अनुमान से ही काम चलता है। जहां अनुमान से काम चलता है वहां थोडी-बहुत भूल तो रह ही जाती है। इसीलिए यहां पहुचने तक बडा विलम्ब हो गया। रास्ते मे कुछ भाइयो से पूछा, यहा से गाव कितनी दूर है तो कहने लगे—पाच कोस होगा। पांच कोस, याने दस मील। हम इसी अनुमान से चले थे पर यहां पहुचे तो दोपहर हो चुका था। पैर भी थोड़े-थोड़े जलने लगे थे। बुरी तरह से थक गए थे। गाव से दो मील पीछे एक छोटी-सी बस्ती आई और वहां एक किसान से पूछा—भाई! गाव कितनी दूर है ? तो कहने लगा—यह बिल्कुल पास मे ही है। पर वह पास ही इतनी दूर हो गया कि किसी तरह पूरा होता ही नही था। सचमुच थके हुए राही को थोडा मार्ग भी बहुत लग जाने लगता है। इसके साथ-साथ एक बात यह भी है कि जो अभ्यस्त हो जाता है उसे बहुत भी थोडा लगने लग जाता है। किसान जो प्रतिदिन पैदल चलते हैं जैसे उन्हें कोस-दो-कोस तो कुछ लगता ही नही। पर हम तो थककर इतने चूर हो गए थे कि उस दो मील के पथ को बड़ी कठिनाई से पार किया। एक साधु तो वहा जगल मे ही एक पेड के नीचे सो गए थे। आचार्यश्री को जब यह पता चला तो उन्होने झट से एक साधु को पानी लेकर उन तक पहुंचाने का आदेश दिया।

करीब एक बजे हम भिक्षा के लिए जा रहे थे। मार्ग मे पैर जलने लगे तो एक वृक्ष की छाया के नीचे खडे हो गए। इतने मे एक वृद्ध

किसान अपना ऊट लिए उधर आ निकला। हमें देखकर वह रुक गया और कहने लगा आज तो हमारे गाव मे बहुत साधु आ गए। मैंने कहा—हा, आज तुम्हारे गाव मे बहुत बडे आचार्य आए है। तुमने उनके दर्शन किए या नही ?

किसान—नही मैंने तो उनको कभी नही देखा।

मैं—आज भी नही देखा ?

किसान—नही।

मैं—क्यो ?

किसान—इसलिए कि जिस घर मे आचार्यजी ठहरे है उस घर के लोगो से हमारा वैर है तब हम वहा कैसे जा सकते है ?

मैं—पर वैर तो लोगो से है आचार्यश्री से तो नही है ? उनके दर्शन के लिए क्यो नही जाते ?

किसान—हा यह तो आप ठीक कहते हैं संत तो परमेश्वर से भी बढकर होते हैं और यह कहते-कहते उसने एक कहानी प्रारम्भ कर दी।

एक गाव मे एक बनिया था। घर का भरा पूरा था। स्वास्थ्य भी अच्छा था। पत्नी भी बडी गुणवती थी। पर उसके कोई पुत्र नही था। बनिया इस चिंता से बडा दुखी रहा करता था। उसने ब्रह्माजी से बडी प्रार्थना की पर उन्होने उसे स्वीकार नही किया। एक बार अकस्मात् नारद मुनि उसके घर पहुच गए। उसने उनकी बडी आवभक्त की नारदजी उससे सतुष्ट हो गए और कहने लगे—बोल भाई ! तुम्हें क्या चाहिए ? उसने बडी नम्रता से कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से मुझे सब कुछ प्राप्त है। मैं पूर्ण संतुष्ट हू। पर देव ! मेरे कोई सतान नही है। यह चिंता मुझे रात दिन सताती है। नारदजी को उस पर दया आ गई और कहने लगे—अच्छा मैं इसका प्रयास करूगा और वे पुन: स्वर्गधाम की ओर लौट गए। वहा जाकर उन्होने ब्रह्माजी से निवेदन किया—

देव ! मर्त्यलोक मे अमुक बनिया सतो का बडा भक्त है पर उसके कोई सतान नही है। अत आप कृपा करके उसे एक पुत्र का वरदान दीजिए। ब्रह्माजी थोडे मुस्कराए और बोले—नारद ! तुम्हे इसका पता नही है। इसके सतान का योग नही है तब मैं उसे सतान कैसे दे सकता हू ? नारदजी कुछ बोल नही सके चुप रह गए।

इस प्रकार बहुत दिन बीत गए। एक बार फिर एक मुनि उसके घर भिक्षा के लिए आए। वह धर्मात्मा तो था ही अत उनकी बडी आवभक्ति की। वे भी उससे सतुष्ट हो गए और कहने लगे—बोलो बेटे ! तुम्हे क्या चाहिए ? उसन पुन अपनी चाह मुनि के सामने प्रकट की तो मुनि ने उसे तीन बार वरदान दिया कि तुम्हारे पुत्र हो जाएगा। फलस्वरूप उसके तीन पुत्र हो गए। एक दिन फिर नारदजी घूमते-घामते उधर आ निकले तो उन्होने देखा—यहा तो बच्चे आनन्द से खेल रहे है। उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नही रहा और व बनिये से सारी बातें पूछने लग। बनिये ने सारा वृतान्त सरलता से उनके सामने प्रगट कर दिया। नारदजी पुनः ब्रह्माजी के पास गए और कहने लगे—आप तो कहते थे कि उस बनिये के पुत्र का योग नही है तब ये पुत्र कैसे हो गए ? ब्रह्माजी ने कहा—नारद ये पुत्र मैंने थोडे ही दिए थे। ये तो अमुक ऋषि ने दिए थे। नारदजी का सिर उसी क्षण ऋषिजी के चरणो मे झुक गया और वे कहने लगे—सचमुच ऋषी परमात्मा से भी बढकर होते है। सो महाराज ! साधु तो महान् ही होते है उनके दर्शन तो करने ही चाहिए पर मैं वहा कैसे जा सकता हू ?

मैं उसकी अज्ञता और विज्ञता दोनो को एक साथ देख रहा था। मैने देखा भारत मे अब भी साधुओ का कितना सम्मान है ? इस कहानी मे भले ही कोई विश्वास करे या न करे पर इसमे साधुओ के प्रति जितना आदर-भाव है उसे तो मानना ही पडेगा। अत यद्यपि साथ वाले सभी

सत वापिस चले गए थे पर मैं उस श्रद्धालु से बातें करने का मोह नही छोड सका। मैंने उसे फिर आचार्यश्री का परिचय दिया और समझाया कि तुम्हें जाकर आचार्यश्री के दर्शन करने चाहिए। वह केवल इसीलिए ही नही कि आचार्यश्री महान् है और उनसे बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है। पर इसलिए भी कि वहा जाने से मकान मालिक के प्रति उसके मन मे जो तीव्र घृणा बैठी हुई है वह भी कम होगी। मैं नही जानता उस श्रद्धालु ग्रामीण ने जिसका मैं नाम नही जानता फिर वैसा किया या नही, पर उसने वहा जाना स्वीकार किया था। यह मैं अवश्य कह सकता हूँ और मुझे विश्वास है जितनी कठिनता से उसने मेरे सामने हामी भरी थी वह उसका तिरस्कार नही कर सकता।

हम वहा जिस मकान में ठहरे थे वह एक राईका जाति का मकान था। साधारणतया लोग उन्हे नीच और घृणित समझ कर उनसे बचना चाहते हैं। पर अब उनके मन मे भी इसकी प्रतिक्रिया होने लगी है। उन्हे अपनी जाति पूछने पर एक बहन ने बताया—हमारे लोग राजा के बराबर बैठते है। हम भी आधे सिंहासन के भागीदार है। मैंने उनसे पूछा क्यो बहनो ! तुम जानती हो प० जवाहरलाल नेहरू कौन है ? तो हस कर कहने लगी—बाबाजी ! हमे क्या पता पडितजी कौन है ? हमारे लिए तो अपना घर ही काफी है।

मैं—क्या तुम कभी शहर (लाडनू) भी नही गई ?

बहनें—नही। हमारे लिए तो अपना घर ही शहर है।

मैं—क्या तुम जानती हो आजकल हिन्दुस्तान मे राज्य कौन करता है ?

बहनें—हा काग्रेस का राज्य है।

मैं—तुम्हे काग्रेस के राज्य मे अधिक सुविधाए मिली कि राजाओ के राज्य मे ?

बहनें—काग्रेस के राज्य मे सुविधाए कहा है ? वह तो हमसे लगान भी अधिक लेती है ।

मैं—पर क्या काग्रेस ने तुम्हारे गाव मे स्कूल नही बनाई ?

बहनें—पर इसमे क्या ? वह रुपया तो हम लोगो से ही लेती है। हमे वापिस तो वह बहुत ही कम देती है। अधिकतर रुपया तो शहरों मे ही खर्च किया जाता है या राजकर्मचारी उसे खा जाते हैं। अतः हमें उनसे क्या लाभ ?

मैं न तो काग्रेस का समर्थन करना चाहता हू न असमर्थन ही। पर इसके बारे मे गावो मे क्या विचार हैं यह प्रासगिक रूप से आ गया तो मैंने उसका विवरण दे दिया। इसके सिवाय आज हमने अत्यन्त निकट से ग्रामीण लोगो की दैनिक चर्या देखी तो ऐसा लगा अभी तक प्रकाश वहा से बहुत दूर है। स्त्रिया प्राय. अशिक्षित हैं। पुरुष नशेबाज है और श्रम से बचना चाहते हैं। बच्चो की शिक्षा की ओर जरा भी ध्यान नही दिया जाता। जनसख्या द्रुत गति से बढ़ रही है। कपड़े फटे हुए और मैले हैं। घर मे कोई व्यवस्था नही है। माताए छोटी-छोटी बातो पर गुस्सा हो जाती है और बच्चो को पीट देती है। बच्चे व्यर्थ ही इधर-उधर दौडते रहते हैं। मोटरें अभी तक यहा कुतूहल का कारण बनी हुई हैं। उन्हे देखते ही बच्चे उनके पीछे दौडने लगते हैं। स्त्रिया अपने बड़े पुरुषों से बात नही कर सकती। पर्दा तो रहता ही है। किसी को बुजुर्गों से कुछ पूछना भी होता है तो बीच मे किसी दुभाषिए की आवश्यकता रहती है। बच्चे दिन भर खाने की रट लगाये रहते हैं। इतना होते हुए भी उनके आचरण अच्छे हैं। उनमे साधुओ के प्रति श्रद्धा कूट-कूट कर भरी हुई है। साधुओं को वे अपने माता-पिता की दृष्टि से देखते है। अतिथि का सत्कार करते हैं। आए हुए लोगो को न केवल स्थान ही देते हैं अपितु भोजन की भी मनुहार करते है। पर फिर भी उनमे सभ्यता

देखनी है तो उसके लिए बडे प्रयास की आवश्यकता होगी। विधान सभा मे कुर्सियो पर बैठ कर उनमे कार्य नही किया जा सकता। जब बड़े लोग ग्रामीण क्षेत्रो को महत्त्व देंगे तब ही वहा सुधार की कोई कल्पना की जा सकती है। पर आज तो सभी लोग शहरी क्षेत्रो की ओर दौड़ रहे हैं। कार्यकर्ता भी गावो मे रहना पसद नही करते। ऐसी स्थिति मे केवल चर्चाओ से कैसे काम चलेगा? धार्मिक दृष्टि से उन्नत होते हुए भी सामाजिक जीवन पिछड़ा हुआ है।

●

२७-३-६०

आचार्यश्री अगले गाव के लिए प्रयाण कर चुके थे। एक भाई जय-घोष (नारा) कर रहा था—नई मोड को, दूसरे लोग कहने लगे—आने दो। तो आचार्यश्री जरा मुस्कराए और पीछे देखकर उनसे कहने लगे—क्यो, है तैयारी ? केवल नारे ही लगाते हो या परिवर्तन भी करना चाहते हो ? वे वेचारे सकुचाये पर एक प्रेरणा अवश्य मिली, देखे उसका क्या प्रभाव होता है ?

नई-मोड की आजकल काफी चर्चा है। कल भी आचार्यश्री ने इस सबन्ध मे कुछ साधुओ से विचार-विमर्श कर एक योजना वनाई थी। नए वर्ष का यह नया अभिनन्दन था। उसका अभिप्रेत यही था कि समाज आज नाना रूढियो से ग्रस्त होकर अनीति की ओर अग्रसर हो रहा है, उसे रोका जाय। क्योकि व्यक्तिश परिवर्तन की आखिर एक सीमा होती है। उससे आगे बढकर वह अधिक नही चल सकता। वहुत सारी परि-स्थितियो मे उसे वाध्य होकर समाज के साथ चलना पडता है। अतः सुधार का एक दूसरा मार्ग भी खोजा जाना चाहिए। जो व्यक्ति को समाज मे रहकर भी साधना की ओर उन्मुख करता रहे। उसे ही नई मोड के द्वारा आचार्यश्री चिह्नित करना चाहते है। ताकि व्यक्ति पर व्यर्थ लदी हुई रूढिया उसकी गति को व्याहत नही कर सके।

एक दूसरा अभिप्रेत भी उसका है और वह यह कि कुछ ऐसी रूढिया जो जैन सस्कृति के साथ सम्पर्क नही रखती उनका भी उन्मूलन करना चाहिए। क्योकि नया प्रकाश जिस गति से होता जा रहा है उस गति से

यदि सस्कृति को भी सत्व-सयुक्ता नही बनाया गया तो वह टूट सकती है। एक प्रसग उसके लिए आया—विवाह प्रसग पर अग्नि के साक्ष्य के स्थान पर स्वास्तिक साक्ष्य क्या काफी नही होगा? अग्नि-साक्ष्य जहां वैदिक सस्कारो का परिचायक है वहा स्वास्तिक साक्ष्य जैन मगल अवबोध का सकेत है। तो क्या जैन लोग इस साक्ष्य को नही अपना सकते? भले ही अग्नि साक्ष्य को वैधानिक मान्यता प्राप्त है पर स्वास्तिक-साक्ष्य को भी वैसा ही बनाया जा सकता है। इन सब आधारो पर नई मोड का प्रासाद बनाया जा रहा है।

२८-३-६०

आज विहार कर आ रहे थे तो मार्ग मे जगल मे एक किसान और उसकी पत्नी हमे मिले। पास मे आते ही उन्होने हमे प्रणिपात किया। उस अपरिचित युगल को देखकर हमारा प्रश्न सहज ही निकल पडा, कहां से आये हो भाई ?

पुरुष कहने लगा—यही सामने हमारा गाव है। आचार्यजी का दर्शन करने के लिए आये है।

हम—तब तो तुम बहुत दूर आ गये ?

किसान—अरे! हम दूर कहा आ गये है ? दूर से तो आचार्यजी आ रहे है।

१५०० मील क्या कम दूर है ? हमारे तो घर बैठे गगा आई है। उसका स्वागत करने इतनी दूर भी नही आते ? हमने देखा तपस्या मे कितना प्रभाव है। अवश्य ही आचार्यश्री बहुत दूर से चलकर आ रहे हैं उन्हे अनेको कष्ट भी उठाने पडे हैं पर जन-मानस पर इसका प्रभाव भी कम नही है। यही कारण है कि अनेको लोग यह समझ कर कि आचार्यश्री इतना कष्ट सहन करते है तो हमे भी इसका थोडा-सा रसास्वादन करना चाहिए, पैदल चलने लग रहे है। बुड्ढी-बुड्ढी बहनें और छोटे-छोटे बच्चे भी इसीलिए उत्साह से आचार्यश्री के साथ पैदल चल रहे है।

ग्रामीणो मे भी इस ओर अच्छा प्रभाव है। प्रायः लोग श्रद्धाशील हैं। पर असवर्ण लोग इस ओर बड़े ही बुझे हुए हैं। आज ही मैं और

मुनिश्री मोहनलालजी कुछ काम के लिए अपरिचित घर मे वृक्ष की छाया के नीचे वैठने के लिए गृहस्वामिनी से अनुमति लेने लगे तो वह हडबडा

और आश्चर्यपूर्वक कहने लगी—महाराज! हम तो भाभी—अस्पृश्य है।

हमने कहा—वहन। तुम भाभी हो तो क्या मनुष्य तो हो?

वहन—हा, मनुष्य तो है पर आप हमारे स्थान पर कैसे ठहर सकते है?

हम—क्यो इसमे क्या आपत्ति है? वह और भी दग रह गई? यह समझ कर कि शायद महाराज हमारी जाति से अपरिचित हैं।

कहने लगी—महाराज! हम तो अछूत है।

हमने कहा—वहन! अछूत आदमी होता है कि उसकी वुराइयां?

वहन – अछूत तो महाराज वुराइया ही होती है पर हमारे गुरू तो हमे यही समझाते है कि तुम शूद्र हो अत तुम्हे सवर्ण लोगो से दूर रहना चाहिए। ब्राह्मण, वैश्यो से दूर रहना चाहिए। इसलिए महाराज हम आपसे कह रहे हैं। आप यहा हमारे घर कैसे ठहरेंगे?

हम—नही वहन! हम लोग मनुष्य मनुष्य मे भेदभाव नही करते। धर्म तो मनुष्य को मिलाना सिखाता है, तव उसमे भेदभाव कैसा? इसलिए अगर तुम्हारी अनुमति हो तो हम यहा कुछ देर ठहरना चाहते है।

वहन—खुशी से ठहरिए महाराज! हमे इसमे क्या आपत्ति है? हमारे तो अहोभाग्य है कि आप हमारे घर को पवित्र करना चाहते है। पर महाराज! आप इसका ध्यान रखियेगा कि कोई आपको क्रिया-चूक नही कह दे।

हम—हमे इसकी परवाह नही है। अच्छा काम करते हुए भी यदि कोई वुरा मानता है तो हम उसका क्या कर सकते है? और हम उसके

मकान में ठहर गये। इधर-उधर से आते हुए भाई हमे बडी शका की दृष्टि से देखने लगे। समझने लगे कि महाराज कहा बैठे हैं ? पर हमे उनकी कोई परवाह नही थी। कुछ बहनो ने तो जो स्वय मेघवाल थी हमे कहा कि महाराज ! यह तो भाभियो का घर है पर हमने उन्हे समझाया तो वे समझ गईं और हम अपना काम करते रहे।

बीच-बीच मे गृहस्वामिनी जो एक प्रौढ महिला थी चर्चा छेड देती—महाराज ! आपके गुरू कौन हैं ?

हम— हमारे गुरू आचार्यश्री तुलसी हैं जो आज यहा तुम्हारे गाव मे आये हुए हैं। क्या तुमने उनके दर्शन नही किये ?

बहन—नही।

हम—क्यो ?

बहन—इसलिए कि हम नही जानते कि वहां जाने का हमारा अधिकार है या नही।

हम—वहा तो सबका अधिकार है और वह साधु ही क्या जो मनुष्य को अछूत कहकर उसका तिरस्कार करे।

बहन—पर क्या आचार्यश्री हमसे बोलेंगे ?

हम—क्यो नही ? तुम कहोगे तो हम तुम्हारा परिचय आचार्यश्री से करा दें।

बहन—तब तो महाराज आचार्यश्री बडे पहुचे हुए महाराज हैं। हमारे गुरू तो ऐसे नही हैं। वे हमारे से रुपये पैसे भी लेते है और अछूत कहकर हमारा अपमान भी करते हैं।

हम—तब तुम उनको गुरू मानते ही क्यो हो ?

बहन—तो क्या करें महाराज ! निगुरे (बिना गुरू वाले) की गति ही जो नही होती।

हम—ऐसी बात नही है हमारी दृष्टि से तो निगुरे की तो फिर भी गति हो सकती है पर कुगुरे की गति नही हो सकती। भला वह क्या

गुरू जो अपने पास पैसे रखे और तुम्हारी भी यह कमजोरी है कि तुम उन्हे गुरू माने हुए हो। वह तो अपना प्रभाव जमाने के लिए तुम्हे सब कुछ कहेगे पर तुम्हे तो आख खोलकर देखना चाहिए।

वहन—तो क्या आचार्यश्री हमे अपना शिष्य बनाएगे ?

हम—क्यो नही? पर एक वात है गुरू वनाने के पहले तुम्हे उनका पूरा परिचय प्राप्त करना चाहिए। उनके क्या आचार-विचार है इसका अध्ययन करना चाहिए। फिर अगर तुम्हे वे अच्छे लगते है तो उन्हे गुरू रूप से स्वीकार कर सकते हो। और अच्छा तो यह हो कि तुम अपनी जाति के सभी लोग मिलकर आचार्यश्री से विचार-विमर्श करो।

वह वेचारी उसी समय धूप मे दौडी और अपनी जाति के पाच-चार मुखियो के पास गई उनसे कहा—हमे आचार्यश्री के पास चलना चाहिए। थोडी देर मे वापिस लौटी तो हमने पूछा—क्यो क्या हुआ वहन!

कहने लगी—अभी तक हमारे लोग इसके लिए तैयार नही है। उनके मन मे है कि आचार्यश्री को गुरू वनाएगे तो वे हमे जरूर कुछ न कुछ खाने पीने की चीजें छुडाएगे। वह हमसे हो सकता नही। तव उनके पास जाने से क्या लाभ ?

हम—पर तुमको यह किसने कहा कि तुम आचार्यश्री को गुरू ही वनाओ। पहले विचार-विमर्श तो करो।

वहन—पर हमारे लोगो मे अभी तक उनके पास जाने मे सकोच है।

हम—यह सकोच तो मिटाना ही चाहिए। उसने फिर थोडा प्रयास किया पर चूकि आचार्यश्री को जल्दी ही आगे के लिए प्रयाण करना था। अत. वे लोग समय पर नही पहुच सके। इसीलिए आचार्यश्री से उनकी वातचीत नही हो सकी। फिर भी कुछ लोग आचार्यश्री के दर्शन करने के

लिए आये थे। उस बहन से भी हमारी अनेक विषयो पर बातें हुई थी। हमने पाया वह अशिक्षित अवश्य थी पर असमझ नही थी। हम वहां जितनी देर ठहरे उसने हमारा बडा स्वागत किया। अत मे थोडी देर के निवास से जो हमारे मन पर प्रभाव पडा वह यह था कि—ये लोग अपने आप मे दबे हुए है उन्हे उन्नति की ओर अग्रसर करने के लिए बहुत बड़े क्रान्तिकारी कदम की आवश्यकता है।

२९-३-६०

गाव मे पानी तालाब का आता है अत उसे साफ करने के लिए मैं एक फिटकरी का टुकडा लाया था। पर जिस व्यक्ति से मैं वह लाया था वह व्यक्ति न जाने कहा चला गया, मुझे वापिस नही मिला। अतः मुझे आचार्यश्री से पूछना पडा इसका क्या करू ? आचार्यश्री ने कहा—तुमने उसका नाम नही पूछा ?

मैं—नही नाम तो मैंने नही पूछा। मैंने समझा थोडी देर मे मैं उसे वापिस दे दूगा।

आचार्यश्री—यह ठीक नही है, किसी से कोई चीज लेनी पड़े तो उसका नाम जरूर पूछना चाहिए। खैर अब तो क्या हो सकता है ? अगर मिले तो उसकी खोज करना और नही मिले तो फिर किसी व्यक्ति को देना तो यह पडेगा ही।

इससे स्पष्ट है कि आचार्यश्री छोटी-छोटी बातो को भी कितना महत्व देते है। आज ही जब मै और मुनिश्री मोहनलालजी एक-एक पैन लेकर आचार्यश्री को दिखाने गये तो आचार्यश्री ने मुनिश्री मोहनलालजी से पूछा—किससे लिया ?

उन्होने कहा—जुहूमलजी घोडावत से। फिर मुझसे पूछा—तुमने किससे लिया ?

मैने कहा—जुहूमलजी घोडावत से।

तो आचार्यश्री एकदम पूछने लगे—एक व्यक्ति से दो पैन क्यों लिए ?

मैंने कहा—एक तो उनका है तथा दूसरा उनके भाई का है, जो उनके ही पास था। अत. हमने दोनो पैन उनसे ही लिए है।

आचार्यश्री की मुद्रा बदल गई और कहने लगे—हमे अपनी ओर से सावधानी बरतनी चाहिए। अधिक मूल्यवान पैन भी हमे नही लेने चाहिए।

मध्याह्न मे जब यहा से विहार हो रहा था बहुत सारे ग्रामीण एकत्र होकर आचार्यश्री के पास आये और विविध प्रत्याख्यान करने लगे।

इतने मे एक व्यक्ति ने एक दूसरे व्यक्ति की शिकायत करते हुए कहा—महाराज ! यह भाग बहुत पीता है अत. इसको भाग पीने का त्याग दिलवाना चाहिए। वह कुछ भागने सा लगा तो आचार्यश्री ने उसे ठहराते हुए कहा—दौडते क्यो हो ? हम तुम्हे बलपूर्वक तो कोई त्याग दिलवा नही रहे हैं। तुम्ही सोचो आखिर भाग पीने से क्या लाभ है ? वह कुछ लाभ भी नही बता सकता था और भाग पीना छोड़ भी नही सकता था। अतः उसने कहा—महाराज ! मुझसे यह नही छूट सकती।

आचार्यश्री—क्यो ? यह कोई रोटी थोडी ही है जो खानी ही पडे। यह तो एक नशा है जो तुम्हारी चेतना को आच्छन्न कर देता है। फिर भी वह तैयार नही हुआ। आचार्यश्री ने उसे फिर समझाया—देखो भाग के कारण तुम्हारे प्रति लोगो मे कैसी भावनाए हैं। सहसा उसके विचारो मे एक सिहरन हुई और इतनी देर तक ना, ना कहने वाला व्यक्ति कहने लगा—अच्छा तो महाराज ! अब से भाग नही पीऊगा।

आचार्यश्री—पर हमारे कहने से या सोच समझ कर ? किसान—खैर आपके कहने से तो कर ही रहा हू। पर आपने मुझे जो प्रेरणा दी है उससे मेरी आत्मा मे एक स्फुरणा हुई है और मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हू कि भविष्य मे मैं कभी भांग नही पीऊगा।

इतने मे आचार्यश्री ने शिकायत करने वाले व्यक्ति से पूछा—अब तुम

क्या त्याग करोगे ? पहला व्यक्ति बोल पडा—स्वामीजी इसे भाग पीने का त्याग करवाइये। वह कुछ हिचकिचाने लगा तो आचार्यश्री ने कहा—अब पीछे क्यो हटते हो इसने तुम्हारी बात मान ली है तो तुम्हे भी इसकी वात को रखना ही पड़ेगा और उसी क्षण उसने भी आजीवन भाग नही पीने की प्रतिज्ञा कर ली। उससे पहले एक सतो का भाषण तो हो चुका था। अत अब जैसे त्याग का प्रवाह खुल गया अनेक लोगो ने अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किये।

३०-३-६०

यद्यपि जमीदारी खत्म हो चुकी है पर उसका नशा तो अभी तक खत्म नही हुआ है। वैसे आय के साधन तो खत्म हो चुके है पर ठकुराई तो अभी तक खत्म नही हुई है। इसीलिए नव-निर्माण की इस स्वर्णिम वेला मे भी यहा ठाकुर साहब खूब जी-भर कर शराब पीते हैं। आज आचार्यश्री ने उन्हे उपदेश दिया तो सहसा उनका बोधाकुर प्रस्फुटित हो उठा और उन्होने जीवन-भर शराब नही पीने की प्रतिज्ञा कर ली। प्रवचन के बाद जब आचार्यश्री राजघराने मे औरतो को दर्शन देने के लिए गये तो स्त्रिया तो फूली नही समा रही थी। कहने लगी—आचार्यजी ! आपने ठाकुर साहब की शराब छुडाकर हमारे घराने को बचा लिया। नही तो पैसे तो जाते सो जाते ही पर इज्जत पर भी पानी फिरता जा रहा था सो आज आपने हमको उबार दिया। स्पष्ट है कि अणुव्रत-आन्दोलन की गावो मे कितनी उपयोगिता है।

आचार्यश्री जब गांवों मे जाते है तो वहा जैसे नव जीवन हिलोरें लेने लगता है। नही तो भला बहिनो के लिए बाजारो में उपस्थित होने का कब अवसर मिल सकता है। घूघट और घर की चार दीवारी मे बद रहने वाली महिलाओ को जैसे उन्मुक्त वातावरण मे श्वास लेने का एक अवसर मिलता है। वे बाजारो और सार्वजनिक स्थानो मे आकर पुरुषों के साथ बैठ कर आचार्यश्री का प्रवचन सुनती है। उनके मधु से भी मधुर कण्ठो से जब भक्ति रस से आप्लावित सगीत-सरिता प्रवाहित होती है तो एक बार तो श्रोता को ठिठक जाना पडता है। सचमुच ही प्रकृति ने

उनके स्वरो मे एक प्रतिस्पर्ध्य शक्ति दी है जिसे शहरो के अशुद्ध खाद्य और अप्राकृतिक वातावरण मे सुरक्षित रखना बहुत ही कम सभव है। इसीलिए आचार्यश्री भी भक्तिरससिक्त भजनो को सुनना पसद करते है और साथ ही साथ उनकी देशी रागिनी भी ग्रहण करते चले जाते हैं।

उनके अतिरिक्त आबाल-वृद्ध पुरुषो मे भी एक नया उन्मेष उतर आता है। बूढे आदमी जो घर मे खाटो मे पडे रह कर अपने जीवन की अतिम राह देख रहे होते है वे भी लाठी के सहारे प्रवचन स्थल पर पहुच जाते हैं। सचमुच उस समय का दृश्य लेख्य नही है। वह दृश्य ही है। अत. देखकर ही जाना जा सकता है।

रात्रिकालीन प्रवचन करके आचार्यश्री विराम हेतु अपने शयन-बिस्तर पर आए ही थे, पूरे अवस्थित भी नही हो पाये थे कि एक गाव के कुछ भाइयो ने उन्हे घेर लिया और अपनी मर्म-व्यथा सुनाने लगे। वे सब परस्पर विशेष-विदग्ध थे। अनेक विषयो को काफी लम्बी अवधि से लेकर उनमे मतभेद था। यही मतभेद अब तीक्ष्ण होकर मन-भेद का बीज बन गया और वह भरसक प्रयत्न के उपरान्त भी निर्जीव नही हो रहा था। उस गाव के श्रावक समाज पर इस दूषित वायुमडल का बहुत अनिष्ट असर पड रहा था। अन्दर ही अन्दर यह मतभेद की खाई चौडी और गहरी होती जा रही थी। दल वदी ने अपने पैर खूब लम्बे पसार लिये थे। गुण-दर्शन के उचित मार्ग को त्याग कर दोनो ही पक्ष दोष-दर्शन पर तुले हुए थे। प्रशस्य और श्लाघनीय विटप को तो एकदम ही उखाड फेंका था। बिलकुल स्पष्ट बात मे छल और प्रपच दीखता। इस समग्र बवडर का परिणाम बहुत विकृत था। इसलिए आचार्यश्री ने अपने मन मे कुछ सूक्ष्म-सी भावना बना ली थी कि साधु-साध्वियो को चातुर्मासिक प्रवास के लिए वहा नही भेजना चाहिए। यह भावना जब थोडी प्रकाश मे आई और उस गाव के श्रावक-समुदाय ने सुनी तो काफी

वेदना हुई तथा इसे निर्मूल बनाने का सत् प्रयत्न हुआ ।

कल जब आचार्यश्री का चान्दारूण आगमन हुआ तो उस गाव के लोग भी एकत्रित होकर वहा उपस्थित हुए और अपनी समस्या आचार्यश्री के सम्मुख प्रस्तुत की । आचार्यश्री ने कहा—साधु-सम्पर्क तो सस्कार-निर्माण, आत्म-मार्जन और गुण-वर्धन के लिए है । ये कार्य नही सधते है तो वहा साधुओ का कोई उपयोग नही । फिर व्यर्थ मे ही वहा क्यो जाया जाए ? जनसाधारण की दृष्टि मे वात बहुत सीधी सी है । साधु आए तो ठीक, नही आए तो भी ठीक । उनको इससे क्या लगाव ? साधु-सत कोई धन-सपत्ति थोडे ही देते हैं । पर उस गाव के भाई इतने तथ्यानभिज्ञ नही थे । साधु सगति का यह निषेध उन्हे बहुत बड़े लाभ से वचित रहना दीखा और समय समय पर जो प्रकाश की रेखा मिलती है वह भी हाथ से जाती हुई दृष्टिगोचर हुई । तव उनकी अन्त पीड़ा का पार न रहा । एक अज्ञात भय से काप से गए और वर्षावास के लिए अनुनय-विनय करने लगे । बहुत देर तक वैसा करते रहे । उनकी भक्ति का प्रवाह जव वह रहा था उस समय मेरे मन मे एक विचार आया कि "रात का समय है, काफी दूर से आए है । पता नही ये यहा सोएगे या वापिस जाएगे और इनके सोने का क्या प्रवन्ध है ? कोई भी तो चिंता इनको नही सता रही । साधुओ के सम्पर्क से ऐसा उन्हे क्या मिलने वाला है ?" यह विचार चल ही रहा था कि गहराई से उठा हुआ दूसरा विचार इससे आ टकराया कि परमार्थ के लिए है । अपने लिए ही नही परहित के लिए है, भावी-निर्माण के लिए है और सन्तति कल्याण के लिए है ।" उनकी इस उदात्त भावना का ध्यान आया तो अनायास ही भारतीय आत्मा की उच्चता के प्रति सन्मान के भाव उभर आए और मस्तक श्रद्धावनत हो गया ।

विनती अब भी चालू थी, आचार्यश्री कुछ भी नही कह रहे थे । वे पहले इस मनमुटाव को मिटाना चाहते थे और आपस के कलह का

उपशमन चाहते थे जो कि अनेको बखेडो और व्यथाओ का जनक था। आचार्यश्री बहुत स्नेहिल स्वर से सबको समझा रहे थे और हृदय-मिलन का वातावरण विनिर्मित कर रहे थे। रात के करीब बारह बज चुके थे। सत प्राय सो चुके थे और बाकी शयन की तैयारी मे थे। आज आचार्यश्री यहा करीब बारह मील की यात्रा करके आए थे। तब भी उन्हे विश्राम के लिए अवकाश नही था। वे अब तक निरन्तर कार्य निरत थे। इस झझट को मिटाने में इतनी अधिक रात जाने पर भी उन्हे उसी अध्यवसाय से निमग्न देखकर अनायास ही भर्तृहरि की सूक्ति मेरे अधरो पर नाच उठी।

"मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुख न च सुखम्"

३१-३-६०

यहां बहुत पुराने जमाने से जैन समाज का एक कोप चला आता है। जिसका समय-समय पर जैन समाज के लिए उपयोग होता है। पर कुछ वर्षो पहले एक ऐसी अप्रिय घटना घटित हो गई कि अन्ततः न्यायालय के द्वार खटखटाने पडे। घटना यह थी कि कोष की दो कुजिया थी जो एक स्थानकवासी समाज के लोगों के पास रहती थी तथा दूसरी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक लोगो के पास। किसी को अर्थ की आवश्यकता होती तो दोनो इकट्ठे होते और उपयुक्त राशि उसमे से निकाल लेते। एक बार श्वेताम्बर मूर्तिपूजक लोगो को कुछ अर्थ की आवश्यकता हुई तो आपसी सघर्ष के कारण स्थानकवासी भाई उस समय उपस्थित नहीं हुए। पीछे से मूर्तिपूजक भाइयो ने अपनी कुजी से भडार खोल लिया तथा उसमे से अपनी आवश्यकता के अनुरूप अर्थ निकाल लिया। तब फिर क्या था ? मानो अग्नि मे घी पड गया और सारा समाज उद्वेलित हो उठा। आपस मे तनातनी बढ गई आपसी समझौते की आशा क्षीण होने लगी। मामले को न्यायालय तक पहुचाना पडा। किन्तु वहा जाकर वह और भी उलझ गया। दोनो ओर से दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह हजार रुपये व्यय हो गये। आखिर सुलझाव कोई नही हुआ। दोनो ओर के लोग तंग थे। भला एक ही समाज के सदस्य आपस मे इस प्रकार लडें इससे बढकर लज्जाजनक बात और क्या हो सकती है ? और वह भी धार्मिक सम्बन्धो को लेकर। अर्थ का ही प्रश्न था। अतः दोनो ने मिलकर फिर एक पचायत की। पचो ने निर्णय दिया कि आज से भडार की कुजी एक ही रहेगी। वह न स्थानकवासी समाज के पास रहेगी और न मूर्ति-

पूजक समाज के पास । अपितु तेरापथी लोग जो तटस्थ है उनके पास रहेगी । किसी को यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो अपनी समाज के दो प्रतिनिधि इधर से आ जाय और दो प्रतिनिधि उधर से बुला ले फिर जैसा वे तेरापथी भाई उचित समझेंगे वैसा करेंगे । उसी दिन से वह कुजी आज तेरापथी भाई उगमराजजी के पास है । जो अपने उत्तरदायित्व को योग्यतापूर्वक निर्वाह करते हैं । वे स्वय आज उपस्थित थे । उन्होने ही अपने मुह से यह सारा वृत्तान्त आचार्यश्री को सुनाया ।

रात्रि मे स्कूल के प्रागण मे सार्वजनिक प्रवचन हुआ जिसमे शहर के अनेक प्रतिष्ठित नागरिक तथा अधिकारी उपस्थित थे । प्रवचन के अत मे कहने लगे—हमने अनेक बार आपका नाम सुना है पर इसके साथ आपके विरोध मे भी कम नही सुना है । अनेक बार मन मे आता है कि लोग आपका विरोध क्यो करते हैं ? पर आज आपका प्रवचन सुनकर यह समझ मे आया कि अणुव्रत-आन्दोलन के कारण ही आपका बहुत अधिक विरोध होता है । आप आन्दोलन को लेकर द्रुत गति से साधु समाज मे आगे आ गये । अत दूसरो के लिए सिवाय विरोध के और शेष रह ही क्या सकता था ?

२-४-६०

मध्याह्न मे बरगद की ठडी छाया में प्रवचन का आयोजन किया गया था। ब्राह्मणो से लेकर किसानो तक सभी वर्णों और पेशो के लोग सभास्थल मे उपस्थित थे। आचार्यश्री भी निश्चित समय पर सभा-स्थल पर पहुच गये थे। पर वहा जाकर देखते हैं तो आगे का सारा स्थान तो वनिये लोगों ने रोक रखा है। किसान तो वेचारे दूर तक एक किनारे खडे हैं। अतः यहा आसन पर वैठते ही आचार्यश्री ने कहा—हमारी सभाएं सार्वजनिक सभाए है। उसमे पक्ति भेद नही होना चाहिए। मैं नही चाहता केवल बनियो को ही अपने विचार सुनाऊं। अपितु मेरी कामना है कि सभी लोग विना किसी भेदभाव के मेरे विचारो को सुनें। पर लगता है जैसे आगे वैठने का अधिकार केवल बनियो को ही रह गया है। किसान तो वेचारे जैसे अनधिकृत होकर एक ओर खड़े हैं। मैं यह अलगाव नही देखना चाहता। यह तो एक ब्रह्म-भोज है। इसमे सभी लोगो को समान रूप से भोजन करने का निमन्त्रण तथा अधिकार रहता है। अत जो किसान भाई पीछे खडे है उन्हे यह नही समझना चाहिए कि वे आगे नही आ सकते। साथ-ही-साथ आगे वैठे भाइयो से भी मैं यह कहना चाहूगा कि सारे स्थान को उन्हे अवगाहित नही करना चाहिए। किन्तु अपने किसान भाइयो को भी अपने समान अवकाश देकर प्रवचन सुनने का लाभ देना चाहिए। सारे मनुष्य भाई-भाई है अतः हम सबका कर्तव्य है कि हम स्वय उठें तथा दूसरो को उठाने का प्रयत्न करें।

यह सुनकर कुछेक किसान भाई जिनके लिए आगे के लोगो ने स्थान कर दिया था आगे आकर बैठ गये। पर फिर भी कुछ भाई आगे नही आ रहे थे। आचार्यश्री ने प्रवचन आगे नही चलाया। फिर कहने लगे— शायद हमारे कृषिकार बन्धु इस सशय मे हो कि उन्हे आगे बैठने का अधिकार है या नही ? पर यहा तो सभी लोगो के लिए एकसमान अधिकार है।

इतनी प्रेरणा पाकर आखिर सारे ही किसान बधु आगे आ गये और सभी लोगो के साथ बैठकर प्रवचन सुनने लगे। आचार्यश्री ने एक तृप्ति का श्वास लिया और कहने लगे—मुझे ऐसी ही सभाओ मे प्रवचन करने मे आनन्द आता है जिसमे किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो।

प्रवचन मे आचार्यश्री ने एक प्रसग पर कहा—"हम आज इतनी दूर से चल कर आए है अत कुछ लोग कहते हैं आप आराम कीजिये। पर हमने जिस गाव की रोटी खाई है उसका कुछ-न-कुछ तो प्रतिदान करना ही चाहिए। मैं इसे बदला नही मानता हू कि साधुओ को प्रतिदान करना ही चाहिए। किन्तु शारीरिक दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि परिश्रम के बिना भोजन आखिर पच कैसे सकता है ? और साधु की तो परिभाषा ही यही है कि "साध्नोति स्वपरकार्याणि" जो अपने और पराये दोनो का हित-साधन करता है वही साधु है। इसलिए भले ही मैं चलकर आया हू; उपदेश देना मेरा धर्म है और वह मुझे निभाना ही चाहिए। लोग कहते हैं आप आज ही तो आये है और आज ही चले जाएगे। पर हमारे सामने प्रश्न समय का नही काम का होना चाहिए। मैंने तो अपने जीवन का एक लक्ष्य ही बना लिया है कि "समय कम और काम ज्यादा"।

एक प्रश्न के उत्तर मे कि "आप किस धर्म को अच्छा मानते हैं ?" आचार्यश्री ने कहा—यद्यपि जैन धर्म के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है पर

सबसे अच्छा धर्म मैं उसे ही मानता हूं जो व्यवहार मे उतर आये। व्यवहार मे आकर धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष का नही रहता और सच तो यह है कि पुस्तको का धर्म आखिर काम भी क्या आ सकता है? काम वह धर्म ही आ सकता है जो जीवन मे उतरे। बहुत-से लोग मुझे पूछते हैं आप हिन्दू हैं या मुसलमान, ईसाई है या पारसी? पर मैं अपने को क्या बताऊ? मैं तो हिन्दू भी हू, मुसलमान भी हू, ईसाई भी हूं और पारसी भी। क्योकि मैं तो सभी धर्मो का उतना ही आदर करता हू जितना अपने-अपने धर्म का सभी लोग करते हैं। एक बार मैं 'अजमेर दरगाह' मे गया था। द्वार पर पहुंचा ही था कि एक पीर साहब सामने आये और बडे प्रेम से मुझे अन्दर ले जाने लगे। कहने लगे—अन्दर आइये, पर एक काम आपको करना पडेगा। आप जरा अपना सिर खुला न रखें। थोडा-सा कपडा इस पर डाल लीजिये। मैंने पूछा-क्यो?

कहने लगे—हमारा यह नियम है कि नगे सिर कोई भी दरगाह मे नही जा सकता।

मैंने कहा—अच्छा! तब हम दरगाह मे नही जाएगे। हम न तो आपके उसूलो को भग करना चाहते हैं और न अपने उसूलो को। आपका यह उसूल है कि आप नगे सिर किसी को नही जाने देते और हमारा यह नियम है कि हम सिर को ढकते नही। अत. हमारे दोनो के ही उसूलो की सुरक्षा के लिए मेरा अन्दर नही जाना ही उपयुक्त रहेगा। आगे हमारी बहुत सारी बातें हुई पर यहां मुझे इतना ही कह देना है कि मैं मुस्लिम धर्म का भी उतना ही आदर करना चाहता हूं जितना जैन धर्म का। तब मैं कैसे बताऊं कि मैं कौन हू? इसीलिए यह कह सकता हू कि मैं तो हिन्दू भी हू, मुसलमान भी हू, ईसाई भी हू और पारसी भी हू।

३-४-६०

जैतारण एक वहुत प्राचीन गाव है। तेरापथ के इतिहास के साथ भी इसका गहरा सम्बन्ध रहा है। पर आज यहा साम्प्रदायिक भावना का एक जो उदाहरण सुनने को मिला वह सचमुच ही रोमाच कर देने वाला था। घटना यह थी कि यहा एक बिदामी वहन नाम की तेरापथी वहन है। आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व व्यावर के एक अन्य धर्मावलम्वी भाई के साथ उसका विवाह सम्वन्ध हुआ था। अनेको आशा और उज्ज्वल भविष्य के स्वप्नो के साथ जब उसने ससुराल मे पैर रखा तो सवसे पहले उसके सामने प्रश्न आया कि उसे अपना धर्म परिवर्तन करना पडेगा। हालाकि वह और उसका पति एक ही धर्म के दो सम्प्रदायो के अनुगामी हैं, पर जहा निकटता होती है वहा प्रायः कटुता भी उतनी ही गहरी रहती है। अत ससुराल वालो की ओर से यह दवाव डाला गया कि उसे हर हालत मे अपना धर्म परिवर्तन करना ही पड़ेगा। इधर बिदामी वाई भी अपने आप मे दृढ थी। वह और सव कुछ करने के लिए तैयार थी पर अपने धर्म को किसी भी मूल्य पर छोडने के लिए तैयार नही थी। इसीलिए सारे सम्वन्धो के यथावत् होने के बावजूद भी पति के साथ उसकी नही पट सकी। उसने वहुत अनुनय किया—मैं आपके घर मे आई हू, अत आप कहेगे वैसा करने के लिए प्रस्तुत हू, पर धर्माचरण जैसे प्रश्नो पर प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र अधिकार होता है। इस अधिकार को मैं कभी भी खडित होने नही दे सकती। आप मुझसे चाहें जितना काम ले सकते है। रोटी कपड़े के लिए मैं आपसे कोई आग्रह नही करती। पर आत्म-साधना के वारे मे आपका ही अनुकरण करूं, यह

केवल मेरा ही अपमान नही है अपितु सारी नारी-जाति का अपमान है; इसे मैं नही सह सकती। पर पति भी अपनी बात पर अटल था। उसे बिदामीबाई से और कोई भी अपेक्षा नही थी। वह केवल एक ही बात चाहता था कि उसकी पत्नी को भी वही धर्म स्वीकार करना पड़ेगा जिसका आचरण वह कर रहा है। बढ़ते-बढते बात बढ गई और यहा तक बढ़ गई कि बिदामीबाई ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया—भले ही आप दूसरी शादी करलें मैं अपना धर्म नही छोड़ूंगी। मुझे अपनी बुआ (पिता की बहन) की तरह ब्रह्मचारिणी रहना स्वीकार है पर मैं अपने सम्यक्त्व को कभी नही छोड़ सकती। सम्प्रदाय के रग मे रगे हुए पतिदेव ने अन्ततः दूसरी शादी कर ली। बिदामी बाई परित्यक्ता होकर अपने पिता के घर रहने लगी। आज उसकी उम्र करीब ३० वर्ष की है पर फिर भी वह अपने पिता मगलचन्दजी के घर पर ही रहती है। बीच-बीच मे वह अपने ससुराल भी चली जाती है पर अपनी सम्यक्त्व पर वह उतनी ही अटल है जितनी पहले थी। उसके मन मे न पति के प्रति विद्वेष है और न उनके धर्म के प्रति कोई आकर्षण। शाति पूर्वक वह अपना जीवन व्यतीत कर रही है।

इस वृतान्त के बीच बिदामी बहन की बुआ का जो एक वृतान्त आया है वह भी एक विचित्र घटना है। बचपन मे उसे ससार से विरक्ति हो गई थी अतः अपने पिता से उन्होने निवेदन किया कि मैं सयम के मार्ग पर अपने चरण बढाना चाहती हू। किन्तु पिता इस बात को सुनते ही एकदम सहम गए और कहने लगे—नही पुत्री! हमे ऐसा काम नही करना है। हमारा घर एक सम्पन्न घर है और मै नही चाहता कि एक सभ्रान्त पिता की पुत्री साधुत्व ग्रहण कर घर-घर भीख मागती फिरे। अत मैं तुम्हे साधुत्व ग्रहण की आज्ञा कभी नही दे सकता। पर वह भी एक वीर महिला थी। उसने बार-बार अपने पिता को प्रसन्न करने का

प्रयत्न किया। पर अनेक प्रार्थनाओ के बावजूद भी उनकी आत्मा उन्हें साध्वी बनाने के लिए जरा भी विचलित नही हुई। किन्तु वह बहन भी अपने सकल्प से कब डिगने वाली थी ? उसने प्रण कर लिया कि भले ही मुझे साधुत्व आए या नही आए पर मैं जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करूगी। फिर भी पिता का दिल नही पसीजा। उन्हे यह स्वीकार था कि भले ही उनकी पुत्री ब्रह्मचारिणी रह जाए पर वह साध्वी बनकर घर-घर भीख मागे यह उन्हे कभी सह्य नही था। फलत उसको साधुत्व नहीं आ सका और वह ब्रह्मचारिणी रहकर धर्माराधना करने लगी। उन्होने जीवन भर अखड ब्रह्मचर्य का पालन किया और जैसा स्वाभाविक था उस तपस्या से उनका मुखमडल तपो-दीप्त हो उठा। गाव के सारे लोग यहा तक कि बडे-बडे ठाकुर भी उनसे प्रभावित रहते थे तथा उनका चरण स्पर्श करने मे अपना कल्याण मानते थे। साधु-साध्वियो की भी वह बडी सेवा किया करती थीं। इसीलिए मघवागणि की उन पर बड़ी कृपा रहती थी। सचमुच तेरापथ का इतिहास इन्ही बलिदानो का एक सजीव इतिहास है।

५-४-६०

चैत्र शुक्ला नवमी का वह स्वर्णिम प्रभात। उमडते जन समूह का उल्लास भरा स्रोत। मधुरता व सरसता से श्रोतःप्रोत वातावरण। नि.सन्देह सुधरी के इतिहास का वह पुण्य दिवस था। तेरापथ के आद्य प्रवर्तक महान् क्रान्तिकारी सत भिक्षु द्वारा अत श्रेयस् के लिए जहा से तेरापथ के रूप मे एक क्रान्ति अभियान सप्रवर्तित किया गया था वह ऐतिहासिक नगरी सुधरी, आचार्य भिक्षु के एतद्युगी अध्यात्म-उत्तराधिकारी, राष्ट्र के महान् सत, अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी के अभिनन्दन मे हर्ष विभोर थी। क्या बच्चे, क्या बूढे सबके रोम-रोम मे अनिर्वचनीय आनन्द परिव्याप्त हो रहा था। आचार्य प्रवर प्रातः सवा आठ बजे ठाकुर जैतसिहजी की छत्री मे पधारे। जहा "आचार्य भिक्षु अभिनिष्क्रमण समारोह" का आयोजन किया गया था।

गाव के उपकठ मे स्थित यह छत्री ठीक दो सौ वर्ष पूर्व आचार्य भिक्षु द्वारा आत्म-हित के लिए उठाए गए क्रान्त चरण के अवसर पर उनके लिए इसी चैत्र शुक्ला नवमी के दिन विश्राम-स्थली बनी थी। छत्री पर विशाल सभा-मडप निर्मित था। सगमरमर के पत्थर पर आचार्य भिक्षु का जीवन-वृत्त उत्कीर्ण कर वहा आरोपित किया गया था। दो शताब्दियो के पश्चात् होने वाले इस ऐतिहासिक समारोह की स्मृति मे एक स्मृति-स्तभ निर्मित किया गया था। उसमे एक सगमरमर का पत्थर खचित था, जिस पर इस ऐतिहासिक उत्सव की आयोजना का उल्लेख था। साथ-ही-साथ आचार्यश्री भिक्षु द्वारा तत्व विश्लेपण के रूप मे दिए गए

मौलिक दृष्टान्तो के कला पूर्ण चित्र, उनके जीवन व विचार-दर्शन से सम्वद्ध आलेख पत्र छत्री के चारो ओर दिवारो पर लगाए गए थे।

आचार्यश्री द्वारा प्रशात एव गभीर स्वर मे समुच्चारित आगम वाणी से लगभग दस हजार जनता की उपस्थिति मे कार्यक्रम प्रारभ हुआ।

आचार्यश्री ने इस अवसर पर अपना प्रेरक सदेश देते हुए कहा—आज हमे सात्विक गर्व और प्रसन्नता है कि दो सौ वर्ष पूर्व का ऐतिहासिक अभि निष्क्रमण समारोह मनाने के लिए हम उपस्थित है। अभिनिष्क्रमण का अर्थ है—निकलना। किसी लक्ष्य के समीप जाना, प्रव्रजित होना। इतिहास वताता है कि गौतम बुद्ध का अभिनिष्क्रमण हुआ था। घर से निकल कर वे ६ वर्षो तक अन्य साधको के साथ रहे। फिर दूसरी वार अभिनिष्क्रमण कर उन्होने वोधि प्राप्त की। आचार्य भिक्षु ने भी दो वार अभिनिष्क्रमण किया। ८ वर्षो तक वे स्थानकवासी सम्प्रदाय मे रहे। यह उनके पहले अभिनिष्क्रमण का परिणाम था। तदनन्तर वोधि प्राप्त कर उन्होने दूसरी वार इसी चैत्र शुक्ला नवमी को फिर अभिनिष्क्रमण किया। उसके दो कारण थे—आचार-विचार का मतभेद। आचार-विचार के शैथिल्य से उनका मानस उद्वेलित हुआ। उन्होने अपने विचार गुरू के सामने रखे। दो वर्षो तक विचार विनिमय चला। पर जव अत तक भी कोई सामजस्य नही वैठ सका तो उन्हे अभिनिष्क्रमण करना पडा। अभिनिष्क्रमण मतभेद को लेकर हुआ था, मन भेद को लेकर नही। उनके अनुयायी भी यह स्वीकार करते हैं कि गुरू शिष्य मे परस्पर वडा प्रेम था। यह भी माना जाता है कि आचार्यश्री रुघनाथजी के उत्तराधिकारी के रूप मे आचार्य भिक्षु का ही नाम लिया जाता था।

चैत्र शुक्ला नवमी को अभिनिष्क्रमण हुआ। विलग होने पर आचार्य भिक्षु को रहने के लिए न स्थान मिला और न चलने के लिए मार्ग ही। इसका कारण यह था कि शहर मे घोपणा हो चुकी थी कि कोई उन्हे रहने के लिए स्थान न दे। वह घोपणा सभव है इसलिए की गई हो कि

वे घबराकर पुन. लौट आए। आगे का मार्ग इसलिए अवरुद्ध था कि भयकर अधड आ गया। दोनों ओर से अवरोध पाकर वे श्मशान की इस छत्री मे ठहरे। सभवत· उन्होने यह सोचा होगा कि एक दिन तो यहा आना ही है। अच्छा है पहले ही यहा का परिचय प्राप्त कर लें।

जब आचार्य रुघनाथजी को यह पता चला कि भीखणजी छत्रियो मे रुके हुए हैं तो वे वहा आए और कहने लगे—भीखण ! याद रखना मैं लोगो को तुम्हारे पीछे लगा दूंगा। भीखणजी ने इसे गुरू का पहला प्रसाद माना और कहने लगे—यदि आप मेरे पीछे लोगो को लगा देंगे तो इससे बढकर मेरे लिए खुशी की और क्या बात हो सकती है ? दूसरी बात जो उन्होने कही—तुम आखिर जाकर जाओगे कहा ? जहा भी जाओगे वहा आगा तुम्हारा और पीछा मेरा। आचार्य भीखणजी ने इसे गुरू का दूसरा प्रसाद मानकर कहा—यदि आप ही मुझे आगे करना चाहते है तो मैं भी क्यो न आगे होऊंगा ? भिक्षु स्वामी की प्रत्युत्पन्न-मति से रुघनाथजी पहले परिचित थे ही। आज ऐसी बातें सुनकर उन्हे बडा खेद हुआ। पर भिक्षु स्वामी तो अपने १३ साथियो के साथ सत्य की खोज मे निकल चुके थे। वे जिस ओर चले, वही एक पथ बन गया। लोगो ने उसका नाम "तेरापथ" दे दिया। भिक्षु स्वामी ने इसका निर्युक्त करते हुए कहा—हे प्रभो ! यह तुम्हारा ही पथ है।

विलग होते ही उन्हें बाधाओ का सामना करना पडा। उनका उल्लेख एक जगह उन्ही के शब्दो मे इस प्रकार हुआ है—म्हे उणा ने छोड़ निसर्‌या जद पाच वर्ष तो पूरो अन्न पाणी न मिल्यो। घी चौपड तो कठै छै। कपडो कदाचित वासती मिलती सवा रुपया री। जद भारमलजी कहता पछेवडी आपरे करो। जद हू कहतो एक चोलपट्टो थारे करो एक चोलपट्टो म्हारे करो। आहार पाणी जाच कर सर्व साधू उजाड़ मे परा जाता। रूखरी छायां मे आहार पाणी म्हेलता, अने आतापना लेता। आथण रा पछै गाम मे आवता। इण रीते कष्ट भोगवता, कर्म

काटता, म्हे या बात न जाणता म्हारो मारग जमसी। साधु साध्वी यू दीक्षा लेसी। अने श्रावक-श्राविका होसी। जाण्यो आतमा रा कारज सारस्यां मर पूरा देस्यां।

इसके बाद जब उनका मार्ग जमने लगा तो सगठन को प्राणवान् बनाने के लिए उन्होंने कुछ सूत्र दिए—

१. शिष्य परम्परा का उन्मूलन—सब शिष्य एक आचार्य के हो।

२. समसूत्रता—समान कार्य पद्धति, एक ही मार्ग का अनुसरण।

३. अनुशासन।

आचार्य भिक्षु मे विराट् व्यक्तित्व के बीज प्रारभ से ही थे। गृहस्थ अवस्था मे जब वे ससुराल गए तब भोजन के समय सालिया गालियां गाने लगी। उन्होंने कहा—यह कैसा समादर? मैं तो भोजन कर रहा हूं और ये गालिया दे रही हैं। और वे भी झूठी। मैं कुरूप नही हू तो भी मुझे काला-कावरा बतलाती हैं और मेरा साला जो अगहीन है उसे अच्छा सुरूप बताती हैं। ऐसी झूठी गालिया मैं नही सुनना चाहता। यह कहकर वे उठ खडे हुए। आखिर लोगो ने वे गालिया बन्द करवाई तो वे पुन भोजन करने बैठे।

वे सदा से ही रूढियो के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने एक जगह पर्दे पर व्यग करते हुए कहा है—

"नारी लाज करै घणी, न दिखावै मुख न आख।
गाल्या गावण बैठे जणा कपड़ा दिया न्हाक।"

वे एक महान् विचारक थे। अपनी विचार क्रान्ति को प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—

१. सत्क्रिया सबकी अच्छी है, भले ही वह सम्यक् दृष्टि की हो या मिथ्या दृष्टि की।

२. धर्म जीवन-शुद्धि का मार्ग है, वह आत्मा से होता है, धन से नही।

३ सबसे बडा दान अभयदान है।

४. सबको आत्म-तुल्य समझ कर किसी का शोषण नही किया जाए, वह दया है।

कुछ लोग उनके क्रान्ति मूलक विचारो को सह नही सके और उन्होने उनका गलत प्रचार किया। उन्हे दान-दया का विरोधी ठहराया। कही-कही उनके अनुयायियो ने भी उनके तत्वो को नही समझा तथा अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उनका दुरुपयोग किया। तेरापथ के विकास के चार महत्त्वपूर्ण विकल्प है—

१ शाति।

२. सहिष्णुता।

३. विरोध के लिए शक्ति का व्यय न हो।

४. कार्य से ही विरोध का उत्तर दो।

इसलिए वह प्रतिदिन विकासोन्मुख है। अभिनिष्क्रमण के अवसर पर हम भिक्षु स्वामी के विचारो का शत-शत अभिनन्दन करते है तथा उन्हे फैलाने का दृढ संकल्प करते हैं।

राजस्थान के मुख्यमत्री श्री मोहनलाल सुखाडिया ने अपने भाषण के बीच आचार्य भिक्षु के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा—'आज से दो सौ वर्ष पूर्व आचार्य भिक्षु ने जो एक अध्यात्म-क्रान्ति की थी सचमुच अपने आप मे वह एक महान् अनुष्ठान था। वर्तमान समय मे उनके उत्तराधिकारी आचार्यश्री तुलसी ने उसी क्रान्ति को आगे बढाकर देश के लिए एक महान् कार्य किया है। क्रान्ति वास्तव मे वही है जो अपने पुराने मन्तव्यो को नया मूल्य दे सके, उन्हे युगानुकूल ढाल सके। हमे अपनी प्राचीन मान्यताओ को युग के अनुकूल ढालना होगा। तभी हम अपनी प्राचीनता की सुरक्षा कर सकेगे।'

'आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन के रूप मे एक सर्वहिताय कार्यक्रम देश के सामने रखकर वास्तव मे ही राजस्थान का गौरव

बढाया है। हमे अपने आचार्य पर गौरव है। इस अवसर पर जबकि देश के भिन्न-भिन्न भागो से आकर लोग यहा उस महापुरुष को अपनी श्रद्धाजलि समर्पित कर रहे हैं मैं उनसे यह कहना चाहूगा कि उनके उपदेशो पर भी उन्हे ध्यान देना चाहिए। बिना आचरण के श्रद्धा अकेली पगु है।

राजस्थान के वित्त मन्त्री तथा देश के प्रमुख गाधीवादी विचारक श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने अपने भाषण मे कहा—आचार्यश्री के सान्निध्य मे जब भी कोई कार्यक्रम होता है मुझे उसमे उपस्थित रहना अच्छा लगता है। क्योकि आचार्यश्री अहिंसा के मूर्तिमान प्रतीक है। आज भी यहा उपस्थित होकर मुझे बडी खुशी है।

आज हम जिस स्थान पर उपस्थित हुए है वह स्थान आचार्य भिक्षु का क्रान्ति स्थान है। किसी महान् क्रान्ति के प्रति श्रद्धाशील होने का मैं यह अर्थ नही लेता कि उन्हे माथा टिकाकर हम खाली हाथ लौट जाए। हमारा कर्तव्य है कि उनके सिद्धान्तो का सही चिंतन और आचरण करे।

तदनन्तर महासभा के अध्यक्ष श्री नेमीचन्दजी गधैया द्वारा प्रेषित वक्तव्य उनके सुपुत्र श्री सम्पतकुमार गधैया ने पढकर सुनाया।

समारोह की स्वागत समिति के सयोजक श्री मोतीलालजी राका ने अपने साहित्यिक भाषा प्रवाह मे आभार प्रदर्शन करते हुए कहा—हम बगडीवासियो की वर्षो से यह साध थी कि जिस बगडी—सुधरी की पुण्य भूमि से आचार्य भिक्षु एक नव सकल्प मे प्रतिबद्ध हो प्रगति पथ पर आरूढ हुए थे, दो सदियो की परिसमाप्ति पर हम उस गौरवशील इतिहास को दुहराने के निमित्त एक वृहत् आयोजन के रूप मे यहा एकत्र हो। आज हमारी वह साध पूरी हो रही है। हम लोगो के सौभाग्य की सीमा नही है कि उन्ही स्वनामधन्य आचार्य भिक्षु के नवम अध्यात्म-उत्तराधिकारी अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे आज हम उस महापुरुष को स्मरण कर रहे है।

यथार्थ तत्वदर्शन तथा सयम जीवितव्य की ओर प्रेरित करने के निमित्त जो कुछ उन्होने किया वह भारत की अध्यात्म जागृति के इतिहास मे सदा स्वर्णाक्षरो मे लिखा रहेगा।

साधना, त्याग एवं तप से निखरी उनकी लोकजनीन वाणी प्रसाद ओज एव सारस्य की एक सतत प्रवाहिणी निर्झरिणी थी। उनके द्वारा लिखे गए ३६ हजार पद्य नि सन्देह राजस्थानी वाङ्मय की एक अमूल्य निधि हैं।

ज्यो-ज्यो तटस्थ वृत्ति से लोग निकट आते जा रहे हैं, आचार्य भिक्षु द्वारा दिया गया तत्वदर्शन जो मूलतः भगवान् महावीर का ही दर्शन था, उनके हृदयगम होता जा रहा है। फलतः आचार्य भिक्षु से तथा उनके परवर्ती आचार्यो व श्रमणो से प्रतिवोध पा लाखो की सख्या में जन-समुदाय अध्यात्मोन्मुख वनता जा रहा है। मेरी यह सत्कामना है कि ऐसे प्रेरणादायी ऐतिहासिक प्रसग हमारे जीवन मे पुन पुन आएं। हम परस्पर मिलें; अध्यात्म एव संस्कृति की चर्चा करें। आचार्य प्रवर जैसे महान् पुरुषो के ससर्ग से जीवन के विकास पथ पर निरन्तर अग्रसर हों।

अत मे आचार्य प्रवर द्वारा तथा समस्त श्रमण-श्रमणियो द्वारा उद्गीत प्रयाणगीत्त से समारोह सम्पन्न हुआ। सहस्रो कठो से उद्भूत जयघोप से गगन-मंडल गूज उठा। चारो ओर परितोष एव आह्लाद की सुरसरी वह चली। सचमुच आज का यह पुण्य प्रसग सदा मानस पर अकित रहेगा।

समारोह की सम्पन्नता के वाद आचार्यश्री छत्री से गांव की ओर पधारे। सहस्रो नर-नारियो से गाव की गली-गली आकीर्ण थी। गाव मे आचार्यश्री ने तेरापथी सभा भवन मे प्रवास किया। मुख्यमत्री सुखाडियाजी से कुछ देर वातचीत हुई। उन्होने तेरापथ द्विशताव्दी के विराट् आयोजन के प्रति अपनी हार्दिक उल्लास-भावना व्यक्त की।

परिशिष्ट

(यात्रागत गांव उनकी दूरी तथा दिनांक)

स्थान

दिनाक	प्रात:	मील	सायं	मील
२४-१२-५९	सैंयदराजा	११	चान्दोली	५॥
२५-१२-५९	मुगलसराय	९		
२६-१२-५९	वाराणसी	८		
२७-१२-५९	जगतपुर	८	मिरजामुराद	८
२८-१२-५९	महाराजगज	११।	औराइ	३॥
२९-१२-५९	ओज	७	लाला का बाजार	९॥
३०-१२-५९	भूसी	९॥	इलाहाबाद	५
३१-१२-५९	सैलमसराय	३	सल्लापुर	६
१-१-६०	मूरतगज	११॥	थाना पुरा मुफ्ती	२
२-१-६०	कोखराज	२॥।	कसारी	११
३-१-६०	सैनी	२	खागा	११
४-१-६०	थरियाव	८॥	विलेन्दा	७॥
५-१-६०	फतहपुर	६	मलवा	९॥
६-१-६०	खिड़की	१०	शिकढि पुरवा	८
७-१-६०	महाराजपुर	८॥	कृष्णनगर	८॥
८-१-६०	कानपुर	४॥		
९-१-६०			कल्याणपुर	८

दिनांक	प्रातः	मील		सायं मील
१०-१-६०	चौबेपुर	९	शिवराजपुर	६
११-१-६०	घोरसलार	८	बकोरी	७॥
१२-१-६०	गुरुसहायगज	१०		
१३-१-६०	सिकन्दरपुर	८॥		
१४-१-६०	घिलोद	८॥।	बेवर	१०॥।
१५-१-६०	भोगाव	८॥	सुल्तानगज	६॥
१६-१-६०	कुरावली	१०		
१७-१-६०	शेतरी	९॥	एटा	५
१८-१-६०	भदुवा	१०॥		
१९-१-६०	सिकन्दराराऊ	१०	नानऊ	५
२०-१-६०	अलीगढ	११		
२१-१-६०	पलासेल	९॥।	मुनी	९।
२२-१-६०	खुर्जा	१०॥	मामन खुर्द	६॥
२३-१-६०	विलसुरी	११	जोखाबाद	६
२४-१-६०	घूमदादरी	११	गाजियाबाद	८॥
२५-१-६०	शहादरा	१०	दिल्ली बागदिवार	५
२६-१-६०	सब्जीमडी	३		
२७-१-६०			बिरला मन्दिर	४
२८-१-६०	नयाबाजार	४		
२९-१-६०	नागलोई	११		
३०-१-६०	बहादुरगढ	९॥	रोघ	८
३१-१-६०	कलावर	९॥	रोहतक	८
१-२-६०	मदीना	१०॥	महम	४॥
२-२-६०	मढाल	८॥	गढी	८
३-२-६०	हासी	८		

दिनांक	प्रात.	मील	सायं	मील
४-२-६०	हांसी			
५-२-६०	"			
६-२-६०	महियर	७॥	सातरोद	५॥
७-२-६०	हिसार	५॥		
८-२-६०	मुकलाव	८		
९-२-६०	वड़वा	८	चौकी	७
१०-२-६०	झूंपा	८		
११-२-६०	राजगढ	६	शार्दूलपुर	१॥
१२-२-६०	मीढली	७॥	टमकोर	१०
१३-२-६०	जाटा को ल्हसणो	६	गाहगू	८
१४-२-६०	चुरू	१०		
१५-२-६०	मीठो दूधवो	११	उदासर	९॥
१६-२-६०	सरदार शहर	१५		
१७-२-६०	"			
१८-२-६०	"			
१९-२-६०	"			
२०-२-६०	"			
२१-२-६०	"			
२२-२-६०	दुलरासर	१०	खिलेरिया	३
२३-२-६०	गोलसर	८		
२४-२-६०	रतनगढ	८		
२५-२-६०	राजलदेसर	१०		
२६-२-६०			लूणासर	३
२७-२-६०	पडिहारा	७		
२८-२-६०	तालछापर	९	छापर	३

दिनांक		प्रातः मील		साय मील
२९-२-६०	चाड़वास	२		
१-३-६०	बीदासर	७		
१७-३-६०	गुलेरियां	६		
१८-३-६०	सुजानगढ़	३		
२१-३-६०	जसवन्तगढ़	३		
२२-३-६०	लाडनू	३		
२३-३-६०	,,			
२४-३-६०	,,			
२५-३-६०	निम्बी	९	ज्ञानाणा	४
२६-३-६०	खाम्याद	१२	वाठड़ी	४
२७-३-६०	छोटीखाट	८	बड़ीखाटू	३
२८-३-६०	मांजी	१०	चान्दारूण	५
२९-३-६०	ईडवा	३	नथवाड़ा	९
३०-३-६०	पादू	५		
३१-३-६०	नेतड़िया	१०	मेड़ता	५
१-४-६०	घनेरिया	८॥	केकीन	६
२-४-६०	कालू	१०	वलुन्दा	४
३-४-६०	जैतारण	७	चावंडिया	७
४-४-६०	चडावल	७	बगड़ी स्टेशन	५
५-४-६०	बगड़ी (सुधरी)	२		